# विवेक-ज्योति

वर्ष ४४ अंक ३ मार्च २००६ मूल्य रु. ६.००

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर (छ.ग.)

# विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

**हिन्दी मासिक**

**मार्च २००६**

प्रबन्ध-सम्पादक
**स्वामी सत्यरूपानन्द**

सम्पादक
**स्वामी विदेहात्मानन्द**

वर्ष ४४
अंक ३

वार्षिक ५०/- एक प्रति ६/-

५ वर्षों के लिए — रु. २२५/-
आजीवन (२५ वर्षों के लिए) — रु. १,०००/-

विदेशों में – वार्षिक १५ डॉलर, आजीवन – २०० डॉलर
(हवाई डाक से) १०० डॉलर (समुद्री डाक से)

{सदस्यता-शुल्क की राशि का बैंक-ड्राफ्ट - 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम से ही बनवायें}

**रामकृष्ण मिशन**
**विवेकानन्द आश्रम**
**रायपुर – ४९२ ००१ (छ.ग.)**

दूरभाष : ०७७१ - २२२५२६९, ५०३६९५९, २२२४११९
(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)

## अनुक्रमणिका

१. वैराग्य-शतकम् (भर्तृहरि) १०३
२. रामकृष्ण-वन्दना ('विदेह') १०४
३. शिक्षा का आदर्श - १५ (आम जनता की शिक्षा - २) (स्वामी विवेकानन्द) १०५
४. श्रीराम-वाल्मीकि-संवाद (६/१) (पं. रामकिंकर उपाध्याय) १०७
५. चिन्तन-१२१ (चुगलखोरी का दोष) (स्वामी आत्मानन्द) ११२
६. समृद्धि की आधारशिला (१) (स्वामी सत्यरूपानन्द) ११३
७. वेदान्त-बोधक-कथाएँ (९) ११५
८. मानव-वाटिका के सुरभित पुष्प (डॉ. शरद् चन्द्र पेंढारकर) ११८
९. आत्माराम की आत्मकथा (२४) (स्वामी जपानन्द) ११९
१०. दुनिया उतारे आरती स्वामी विवेकानन्द की (कविता) (रामलखन शुक्ल) १२२
११. हिन्दू-धर्म की रूपरेखा (२१) कर्मकाण्ड (स्वामी निर्वेदानन्द) १२३
१२. माँ की मधुर स्मृतियाँ - २८ माँ श्री सारदादेवी - ३ (आशुतोष मित्र) १२७
१३. चाँदनी का आलोक (कहानी) (स्वामी सर्वगानन्द) १३०
१४. विज्ञान भी है संस्कृत में (डॉ. महेश चन्द्र शर्मा) १३३
१५. स्वामीजी का राजस्थान-प्रवास (१५) (खेतड़ी निवास : कुछ घटनाएँ - २) १३५
१६. मेरी स्मृतियों में विवेकानन्द (११) (भगिनी क्रिस्टिन) १३९
१७. नामचर्चा (व्यंग्य) (नरेन्द्र कोहली) १४१
१८. समाचार और सूचनाएँ (नारायणपुर में मन्दिर-प्रतिष्ठा, रामकृष्ण मिशन के वार्षिक रिपोर्ट का सारांश १४४

मुद्रक : संयोग आफसेट प्रा. लि., बजरंगनगर, रायपुर (फोन : २५४६६०३)



प्रिंट आर्डर - १२,७५० (222) प्रख्या

## विवेक-ज्योति के आजीवन सदस्य

(छब्बीसवीं तालिका)

१०००. श्री चन्द्रमोहन जी, टुण्डला, फिरोजाबाद, (उ.प्र.)
१००१. श्री विनोद शर्मा, ९१३ सुदामा नगर, इन्दौर , (म.प्र)
१००२. श्री सी. पी. अग्रवाल, मानसरोवर, जयपुर (राज.)
१००३. श्री देवेन्द्र शर्मा, अलीगंज, लखनऊ (उ.प्र.)
१००४. श्रीशिवशंकर पोद्दार, तिलकनगर,जयपुर (राज.)
१००५. श्री बैजनाथ जी, ट्रान्सपोर्ट नगर, कानपुर (उ.प्र.)
१००६. स्वामी सर्वोत्तमानन्द, विद्या मन्दिर, बेलूड़ मठ, हावड़ा
१००७. श्री सारदा संघ, सुरेश नगर, थातीपुर, ग्वालियर (म.प्र.)
१००८. श्रीमती सुदेशना गुप्ता, काकागुडा, सिकन्दराबाद (आ.प्र.)
१००९. श्री संजय भाई, डाडोला, पानीपत (हरियाणा)
१०१०. श्रीमती नीतिभी बत्रा, बत्रा हॉस्पीटल, पानीपत (हरि.)
१०११. श्री पी. जेठवा, विवेकानन्द कॉलोनी, बालाघाट (म.प्र.)
१०१२. श्री एम.पी. श्रीवास्तव, बिंझिया चौराहा, मण्डला (म.प्र)
१०१३. डॉ. श्रीमती मधु राय, नन्दन रोड, छपरा (बिहार)
१०१४. श्री भरतजी जमींदार, एम.वाई. क्वार्टर, इन्दौर (म.प्र.)
१०१५. श्री केशव आनन्द केशरवानी, सागर (म.प्र.)
१०१६. स्वामी गंगादास जी के. खाखी, विरार वेस्ट, मुम्बई
१०१७. श्री सुरेन्द्र तिवारी, ७८६, मुट्ठीगंज, इलाहाबाद (उ.प्र.)
१०१८. श्री अजय कुमार भूत, बैंगुर एवेन्यु, कलकत्ता (प.बं.)
१०१९. श्री अरुण रश्मि, सैनिक स्कूल, अमृतसर (पंजाब)
१०२०. श्री आनन्द एच. सेठ, छोटा पारा, रायपुर (छ.ग.)
१०२१. श्रीमती अजिता चक्रवर्ती, तिलक नगर, बिलासपुर (छ.)
१०२२. श्री विक्रमादित्य द्विवेदी, अनपरा, सोनभद्र (उ.प्र.)
१०२३. श्री संजय पॉल, पचपेड़ी नाका, रायपुर (छ.ग.)
१०२४. श्री शारदा चन्द्र शर्मा, ४८, आनन्द नगर, इन्दौर (म.प्र.)
१०२५. छत्तीसगढ़ ड्रगिस्ट एण्ड केमिस्ट, फरिस्ता का., रायपुर
१०२६. श्री आशुतोष गौराहा, ब्राह्मणपारा, रायपुर (छ.ग.)
१०२७. खातुनबेन डी. पोलरा, तिरुपति चेम्बर्स, डीसा (गुज.)
१०२८. गंथपाल, रामकृष्ण मिशन, पोरबन्दर (गुजरात)
१०२९. श्री चेतन साहू, गाँधीगंज, छिन्दवाड़ा, (म.प्र.)
१०३०. कु. सुरभि मिश्रा, चौबे कॉलोनी, रायपुर (छ.ग.)
१०३१. श्री स्वरूपचन्द बेगानी, हलवाई लाइन, रायपुर (छ.ग.)
१०३२. श्री अजय नानजी भाई पटेल, राजकोट, (गुजरात)
१०३३. श्रीमती सीमा श्रीवास्तव, म्योर रोड, इलाहाबाद (उ.प्र.)
१०३४. श्री सतीश चन्द्र वर्मा, शेखपुरा, विदिशा (म.प्र.)
१०३५. डॉ. डी. मैत्रा, एम.डी., ए.बी. रोड, इन्दौर (म.प्र)
१०३६. श्रीमती देबयानी पलित, राहाटे कॉलोनी, नागपुर (महा.)
१०३७. श्री तरुण कुमार रनडीव, नेहरू नगर,भिलाई, (छ.ग.)
१०३८. सुश्री साधना मित्रा, कोठी बाजार, होशंगाबाद (म.प्र.)
१०३९. श्रीमती रुपाली मोहबे, बनवाड़ी, पूना (महा.)

## लेखकों से निवेदन

**पत्रिका के लिये रचना भेजते समय निम्न बातों पर ध्यान दें —**

(१) धर्म, दर्शन, शिक्षा, संस्कृति तथा किसी भी जीवनोपयोगी विषयक रचना को 'विवेक-ज्योति' में स्थान दिया जाता है।

(२) रचना बहुत लम्बी न हो। ऐसी हो कि पत्रिका के दो या अधिक-से-अधिक चार पृष्ठों में आ जाय। पाण्डुलिपि फूलस्केप रूल्ड कागज पर दोनों ओर यथेष्ट हाशिया छोड़कर सुन्दर हस्तलेख में लिखी या टाइप की हुई हो।

(३) लेख में आये उद्धरणों के सन्दर्भ का पूरा विवरण दिया जाय।

(४) आपकी रचना डाक में खो भी सकती है, अतः उसकी एक प्रतिलिपि अपने पास अवश्य रखें। अस्वीकृति की अवस्था में वापसी के लिए अपना पता लिखा हुआ एक लिफाफा भी भेजें।

(५) 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशनार्थ कविताएँ इतनी संख्या में आती हैं कि उनका प्राप्ति-संवाद देना सम्भव नहीं होता। स्वीकृत होने पर भी उसके प्रकाशन में ६-८ महीने तक लग सकते हैं।

(६) अनुवादित रचनाओं के मूल स्रोत का पूरा विवरण दिया जाय तथा उसकी एक प्रतिलिपि भी संलग्न की जाय।

(७) 'विवेक-ज्योति' के लिये भेजी जा रही रचना यदि इसके पूर्व कहीं अन्यत्र प्रकाशित हो चुकी हो या प्रकाशनार्थ भेजी जा रही हो, तो उसका भी उल्लेख अवश्य करें। वैसे इसमें मौलिक तथा अप्रकाशित रचनाओं को ही प्राथमिकता दी जाती है।

(८) 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त मतों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होगी और स्वीकृत रचना में सम्पादक को यथोचित संशोधन करने का पूरा अधिकार होगा।

## सदस्यता के नियम

(१) पत्रिका के नये सदस्य किसी भी माह से बनाये जाते हैं। यदि किसी पिछले अंक से बनना हो, तो सूचित करें।

(२) अपना नाम तथा पिनकोड सहित पूरा पता स्पष्ट रूप से लिखें। नये सदस्य हों, तो लिखें — 'नया सदस्य'।

(३) पत्रिका को निरन्तर चालू रखने हेतु अपनी सदस्यता की अवधि पूरी होने के पूर्व ही नवीनीकरण करा लें।

(४) पत्रिका न मिलने की शिकायत माह पूरा होने पर ही करें। उसके बाद अंक रहने पर ही पुनः प्रेषित किया जायेगा।

(५) अंक सुरक्षित पाने हेतु प्रति अंक ६/- रुपये अतिरिक्त खर्च कर इसे वी.पी. पोस्ट से मँगाया जा सकता है। यह राशि प्रति माह अंक लेते समय पोस्टमैन को देनी होगी, अतः इसे हमें मत भेजें।

(६) सदस्यता-शुल्क की राशि **स्पीड-पोस्ट मनिआर्डर** से भेजें अथवा बैंक-ड्राफ्ट — **'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़)** के नाम से ही बनवायें।

(७) सदस्यता, एजेंसी, विज्ञापन या अन्य विषयों की जानकारी के लिये 'व्यवस्थापक, विवेक-ज्योति कार्यालय' को लिखें।

॥ आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ॥

# विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

वर्ष ४४ मार्च २००६ अंक ३


## वैराग्य-शतकम्

**आयुर्वर्षशतं नृणां परिमितं रात्रौ तदर्धं गतं**
**तस्यार्धस्य परस्य चार्धमपरं बालत्ववृद्धत्वयोः ।**
**शेषं व्याधिवियोगदुःखसहितं सेवादिभिर्नीयते**
**जीवे वारितरङ्गचञ्चलतरे सौख्यं कुतः प्राणिनाम् ।।४९।।**

**अन्वय – नृणाम् आयुः वर्ष-शतं परिमितं तत्-अर्धं रात्रौ गतं, परस्य तस्य अर्धस्य च अपरम्-अर्धं बालत्व-वृद्धत्वयोः, शेषं व्याधि-वियोग-दुःख-सहितं सेवादिभिः नीयते, वारि-तरङ्ग-चञ्चल-तरे जीवे प्राणिनाम् सौख्यं कुतः?**

भावार्थ – मनुष्य की आयु सौ वर्ष तक सीमित है। उसका आधा भाग तो रात को सोते हुए बीत जाता है, बचे हुए आधे का भी आधा (अर्थात् चौथाई) भाग बचपन तथा बुढ़ापे में बीतता है, और बाकी चौथाई हिस्सा भी रोग, वियोग आदि के साथ दूसरों की सेवा-टहल (पराधीनता) में गुजर जाता है। प्राणियों को इस जीवन में सुख मिलता ही कब है? अर्थात् विचार करने पर सुख कहीं नहीं दिखता।

**क्षणं बालो भूत्वा क्षणमपि युवा कामरसिकः**
**क्षणं वित्तैर्हीनः क्षणमपि च सम्पूर्णविभवः ।**
**जराजीर्णैरङ्गैर्नट इव वलीमण्डिततनु-**
**र्नरः संसारान्ते विशति यमधानीयवनिकाम् ।।५०।।**

**अन्वय – क्षणं बालः भूत्वा क्षणम् अपि काम-रसिकः युवा, क्षणं वित्तैः हीनः क्षणम्-अपि च सम्पूर्ण-विभवः; जरा-जीर्णैः अङ्गैः वली-मण्डित-तनुः नरः संसार-अन्ते नटः इव यम-धानी-यवनिकाम् विशति ।।**

भावार्थ – रंगमंच पर अभिनेता के समान मनुष्य क्षण भर बचपन में गुजारने के बाद, क्षण भर युवक के रूप में कामरस का उपभोग करता है। कभी वह निर्धन रहता है, तो कभी वह पूर्ण समृद्धि का रसास्वादन करता है। उसके बाद बुढ़ापा आने पर उसका सारा शरीर झुर्रियों से भर जाता है और तब वह परदे के पीछे स्थित यमराज के लोक की ओर प्रस्थान करता है।

**– भर्तृहरि**

# रामकृष्ण-वन्दना

– १ –

(पीलू-कहरवा)

ठाकुर, आयो तुम्हारे द्वार ।
सुना, तुम्हारी कृपा अहैतुक, अब कर दो उद्धार ।।

जनम-जनम के करम पड़े हैं,
भव के बन्धन कठिन बड़े हैं;
तुमको छोड़ यहाँ पर मेरा, कौन हरेगा भार ।। ठाकुर ।।

खारा जल है भवसागर में,
भक्ति नहीं है इस गागर में ।
कृपामेघ होकर तुम बरसो, निशिदिन मुसलाधार ।। ठाकुर ।।

कलि में आए करुणा करने,
दीन दुःखी के पीड़ा हरने ।
अब 'विदेह' को पद-आश्रय दो,
छोड़ो सोच-विचार ।। ठाकुर ।।

– २ –

(मधुवन्ती-कहरवा)

अब रामकृष्ण ही सब मेरे ।
उनके चरणों में आया हूँ,
मिट जाएँगे भव के फेरे ।।

वे ही चिन्मय सत्ता निर्गुण,
फिर हो जाते साकार-सगुण ।
उनसे प्रेरित करती माया,
सर्जन-विलयन जग-जन के रे ।।

जब-जब हो जग में धर्मह्रास,
तब-तब आते ले नव प्रकाश ।
अवतीर्ण हो रहे युग-युग में,
सुन दीन-दुखी जन की टेरें ।।

वे हैं करुणा की दिव्य खान,
मन सौंप उन्हीं में चित्त-प्राण ।
कर त्याग मोह इस जीवन का,
उनकी 'विदेह' आश्रय ले रे ।।

– *विदेह*

# आम जनता की शिक्षा (२)

*स्वामी विवेकानन्द*

जब तक करोड़ों लोग भूखे और अशिक्षित रहेंगे, तब तक मैं हर उस आदमी को विश्वासघाती समझूँगा, जो उनके खर्च पर शिक्षित हुआ है, परन्तु जो उन पर तनिक भी ध्यान नहीं देता ! जिन लोगों ने गरीबों को कुचलकर धन पैदा किया है और बड़े ठाट-बाट से अकड़कर चलते हैं, वे इन बीस करोड़ भूखे और असभ्य देशवासियों के लिए यदि कुछ नहीं करते, तो घृणा के पात्र हैं।[३१७]

बीस करोड़ नर-नारी, जो सदा गरीबी और अशिक्षा के दलदल में फँसे हैं, उनके लिए किसका हृदय रोता है? उसके उद्धार का क्या उपाय है? कौन उनके दुख में दुखी है? वे अन्धकार से प्रकाश में नहीं आ सकता, उन्हें शिक्षा नहीं प्राप्त होती – उन्हें कौन प्रकाश देगा, द्वार-द्वार पर जाकर उन्हें शिक्षा देने के लिए कौन घूमेगा? ये ही तुम्हारे ईश्वर हैं, ये ही तुम्हारे इष्ट बनें। निरन्तर इन्हीं के लिए सोचो, इन्हीं के लिए काम करो, इन्हीं के लिए निरन्तर प्रार्थना करो – प्रभु तुम्हें मार्ग दिखायेंगे। मैं तो उसी को महात्मा कहता हूँ, जिसका हृदय गरीबों के लिए पिघलता है, अन्यथा वह दुरात्मा है। आओ, हम सभी अपनी इच्छा-शक्ति को एक साथ जोड़कर उनकी भलाई के लिए निरन्तर प्रार्थना में लगायें।[३१८]

मैं तुम लोगों को एक बार फिर याद दिला देना चाहता हूँ कि कोसने, निन्दा करने या गालियों की बौछार करने से कोई भला उद्देश्य पूर्ण नहीं हो सकता। वर्षों तक निरन्तर ऐसी कितनी ही चेष्टाएँ की गयी हैं, पर कभी अच्छा परिणाम प्राप्त नहीं हुआ। केवल आपसी सद्भाव और प्रेम के द्वारा ही अच्छे परिणाम की आशा की जा सकती है।[३१९]

इस देश में न तो गुणों का सम्मान है, न आर्थिक बल और सर्वाधिक खेद की बात तो यह है कि व्यावहारिकता हममें लेश मात्र भी नहीं है। इस देश में उद्देश्य तो अनेक हैं, किन्तु साधन नहीं। मस्तिष्क तो है, परन्तु हाथ नहीं। हम लोगों के पास वेदान्त मत है, मगर उसे कार्य रूप में परिणत करने की क्षमता नहीं है। हमारे ग्रन्थों में सार्वभौम साम्यवाद का सिद्धान्त है, लेकिन कार्यों में चरम भेदवृत्ति है। महा नि:स्वार्थ निष्काम कर्म भारत में ही प्रचारित हुआ, परन्तु व्यवहार में हम अत्यन्त निर्मम और अत्यन्त हृदयहीन हुआ करते हैं; और मांस-पिण्ड की अपनी इस काया को छोड़ अन्य किसी विषय में हम सोचते ही नहीं।

फिर भी हमें वर्तमान अवस्था में ही आगे बढ़ते रहना है, दूसरा कोई उपाय नहीं। भले-बुरे के निर्णय की शक्ति सबमें है; पर **वीर तो वही है, जो भ्रम-प्रमाद तथा दुखपूर्ण संसार-तरंगों के आघात से अविचलित रहकर, एक हाथ से आँसू पोछता है और दूसरे अकम्पित हाथ से उद्धार का मार्ग दिखाता है !** एक ओर प्राचीनपन्थी पिण्ड जैसा समाज है और दूसरी ओर चपल, अधीर, आग उगलनेवाले सुधारक-वृन्द हैं; इन दोनों के बीच का मध्यम मार्ग ही हितकर है। मैंने जापान में सुना कि वहाँ की बालिकाओं का विश्वास है कि यदि उनकी गुड़ियों को हृदय से प्रेम करे, तो वे जीवित हो उठेंगी। जापानी बालिकाएँ अपनी गुड़ियाँ को कभी नहीं तोड़ती। हे महाभाग ! मेरा भी विश्वास है कि हतश्री, आभागे, निर्बुद्धि, पददलित, चिर-बुभुक्षित, झगड़ालू और ईर्ष्यालु भारतवासियों को भी यदि कोई हृदय से प्यार करने लगे, तो भारत पुन: जाग्रत हो जायेगा। भारत तभी जागेगा, जब विशाल हृदयवाले सैकड़ों स्त्री-पुरुष भोग-विलास तथा सुख की सभी इच्छाओं को विसर्जित करके मन-वचन और शरीर से उन करोड़ों भारतीयों के कल्याण हेतु सचेष्ट होंगे, जो निर्धनता व अज्ञान के अगाध सागर में निरन्तर नीचे डूबते जा रहे हैं। मैंने अपने जैसे क्षुद्र जीवन में अनुभव कर लिया है कि उत्तम लक्ष्य, निष्कपटता और अनन्त प्रेम से विश्वविजय की जा सकती है। ऐसे गुणों से सम्पन्न एक भी व्यक्ति करोड़ों पाखण्डी एवं निर्दयी मनुष्यों की दुर्बुद्धि को नष्ट कर सकता है।[३२०]

## दुर्बल को अधिक सहायता मिले

भारत के सभी अनर्थों की जड़ है – गरीबों की दुर्दशा। पाश्चात्य देशों के गरीब तो निरे दानव हैं; उनकी तुलना में हमारे यहाँ के गरीब देवता हैं। इसीलिए हमारे गरीबों की उन्नति करना सहज है।[३२१] हमारी जनता बहुत अच्छी है, क्योंकि यहाँ निर्धनता अपराध नहीं है। हमारी जनता हिंसक नहीं है। अमेरिका और इंग्लैंड में मैं कई बार केवल अपनी अलग वेशभूषा के कारण ही लोगों द्वारा आक्रान्त हुआ हूँ। पर भारत में मैंने ऐसी बात कभी नहीं सुनी कि भीड़ किसी व्यक्ति की वेशभूषा के कारण उसके पीछे पड़ गयी हो। अन्य सभी बातों में, हमारी जनता यूरोप की जनता की अपेक्षा कहीं अधिक सभ्य है। ... इन्हें हमें लोकोपयोगी शिक्षा देनी होगी। हमें अपने पूर्वजों द्वारा निश्चित की हुई योजना के अनुसार

चलना होगा, अर्थात् सब आदर्शों को धीर-धीरे जनता में पहुँचाना होगा। उन्हें धीरे-धीरे ऊपर उठाइए, अपने बराबर उठाइए। उन्हें लौकिक ज्ञान भी धर्म के द्वारा दीजिए।[३२२]

मनुष्य भगवान है, नारायण है; आत्मा में स्त्री-पुरुष-नपुसंक तथा ब्राह्मण, क्षत्रियादि भेद नहीं है; ब्रह्मा से लेकर घास के तिनके तक – सब कुछ नारायण है।' कीट अल्प अभिव्यक्त (less manifested) तथा ब्रह्म अधिक अभिव्यक्त (more manifested) है। जिन कार्यों से जीव को धीरे-धीरे अपने ब्रह्मभाव की अभिव्यक्ति में सहायता मिलती है, वे ही अच्छे हैं और जिनके द्वारा उसमें बाधा पहुँचती है, वे बुरे हैं। अपने में ब्रह्म को अभिव्यक्त करने का यही एकमात्र उपाय है – इसी विषय में दूसरे की सहायता करना।

सबके स्वभाव में भेद होने पर भी सबको समान सुविधा मिलनी चाहिए। इसके बावजूद यदि किसी को अधिक तथा किसी को कम सुविधा देनी हो, तो बलवान की अपेक्षा दुर्बल को अधिक सुविधा प्रदान करनी चाहिए। अर्थात् चाण्डाल के लिए शिक्षा की जितनी जरूरत है, उतनी ब्राह्मण के लिए नहीं। यदि किसी ब्राह्मण के पुत्र के लिए एक शिक्षक आवश्यक हो, तो चाण्डाल के लड़के के लिए दस शिक्षक चाहिए। कारण यह है कि जिस बुद्धि की स्वाभाविक प्रखरता प्रकृति के द्वारा नहीं हुई है, उसे अधिक सहायता देनी होगी। चिकने-चुपड़े पर तेल लगाना तो पागलों का काम है। The poor, the downtrodden, the ignorant, let these be your God – पददलित तथा अज्ञ तुम्हारे ईश्वर बनें। ... **आत्मवत् सर्वभूतेषु** – क्या यह वाक्य केवल पोथी में बँधी रहने के लिए है? जो लोग गरीबों को रोटी का एक टुकड़ा नहीं दे सकते, वे फिर मुक्ति क्या दे सकते हैं? जो दूसरों के श्वास-प्रश्वासों से अपवित्र बन जाते हैं, वे फिर दूसरों को क्या पवित्र बना सकते है?[३२३] जिनका रक्त शोषण करके हमारे 'भद्र लोगों' ने अपने खिताब प्राप्त किये हैं और कर रहे हैं, उन बेचारों के लिए एक भी संस्था नजर न आयी ! मुसलमान कितने सिपाही लाये थे? यहाँ अंग्रेज कितने हैं? चाँदी के छह सिक्कों के लिए अपने बाप और भाई के गले पर चाकू फेरनेवाले लाखों आदमी सिवा भारत के और कहाँ मिल सकते हैं? सात सौ वर्षो के मुस्लिम शासन में छह करोड़ मुसलमान और सौ वर्षों के ईसाई राज्य में बीस लाख ईसाई क्यों बने? मौलिकता ने देश को क्यों बिल्कुल त्याग दिया है? क्यों हमारे सुदक्ष शिल्पी यूरोपवालों के साथ बराबरी करने में असमर्थ होकर दिनो-दिन लुप्त होते जा रहे हैं? परन्तु वह कौन-सी शक्ति थी, जिससे जर्मन कारीगरों ने अंग्रेज कारीगरों के सैकड़ों वर्षों से जमे हुए आसन को हिला दिया? केवल शिक्षा ! शिक्षा ! शिक्षा ![३२४]

### जनता में शिक्षा-प्रसार ही उन्नति का मूल है

वर्तमान सभ्यता – जैसी कि पश्चिमी देशों की है – और प्राचीन सभ्यता – जैसी कि भारत, मिश्र तथा रोम आदि देशों की रही है – इनके बीच अन्तर उसी दिन से शुरू हुआ, जब से शिक्षा-सभ्यता आदि उच्च जातियों से धीरे-धीरे निचली जातियों में फैलने लगी। मैं प्रत्यक्ष देखता हूँ कि जिस जाति की जनता में विद्या का जितना ही अधिक प्रचार है, वह जाति उतनी ही उन्नत है। भारत के सर्वनाश का मुख्य कारण यही है कि देश की सारी विद्या-बुद्धि, राज-शासन और दम्भ के बल पर मुट्ठी-भर लोगों के एकाधिकार में रखी गयी। यदि हमें फिर से उन्नति करनी है, तो हमें उसी मार्ग पर चलना होगा, अर्थात् जनता में विद्या का प्रसार करना होगा।[३२५]

सारा दोष यहाँ है – वास्तविक राष्ट्र जो कि झोपड़ियों में बसता है, अपना मनुष्यत्व भूल चुका है, अपना व्यक्तित्व खो चुका है। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, – हरेक के पैरों-तले कुचले गये ये लोग यह समझने लगे हैं कि जिस किसी के पास भी पर्याप्त धन हो, उसी के पैरों-तले कुचले जाने के लिए उनका जन्म हुआ है। उन्हें उनका खोया हुआ व्यक्तित्व लौटाना होगा। उन्हें शिक्षित करना होगा। ... हमें केवल उनके मस्तिष्क में विचारों को भर देना है, बाकी सब कुछ वे लोग अपने आप कर लेंगे। इसका अर्थ यह हुआ कि आम जनता में शिक्षा का प्रसार करना होगा।[३२६]

❖ (क्रमशः) ❖

**सन्दर्भ-सूची –**

**३१७**. विवेकानन्द साहित्य, (सं. १९८९) खण्ड ३, पृ. ३४५-४६; **३१८.** वही, खण्ड ३, पृ. ३४५; **३१९.** वही, खण्ड ५, पृ. ९४; **३२०**. वही, खण्ड ६, पृ. ३०६-०७; **३२१.** वही, खण्ड २, पृ. ३६९; **३२२.** खण्ड ४, पृ. २५२; **३२३**. वही, खण्ड ४, पृ. ३०९-१०; **३२४.** वही, खण्ड ६, पृ. ३११; **३२५.** वही, खण्ड ६, पृ. ३१०-११; **३२६.** वही, खण्ड २, पृ. ३६५-६६

### परमात्मा ने ही सभी रूप धारण किये हैं

मनुष्य मानो तकिए के गिलाफ जैसे हैं। ऊपर से देखने में कोई गिलाफ लाल, कोई नीला, तो कोई काला होता है, परन्तु सभी के भीतर एक ही रुई है। उसी प्रकार, कोई मनुष्य देखने में सुन्दर है, तो कोई काला, कोई सज्जन है, तो कोई दुष्ट, किन्तु सब के भीतर एक ही परमात्मा विराजमान हैं। *– श्रीरामकृष्ण*

# श्रीराम-वाल्मीकि-संवाद (६/१)

*पं. रामकिंकर उपाध्याय*

(आश्रम द्वारा १९९६-९७ में आयोजित विवेकानन्द-जयन्ती-समारोहों के समय पण्डितजी ने उपरोक्त विषय पर जो प्रवचन दिये थे, यह उसी का अनुलेख है। टेप से इसे लिपिबद्ध करने का श्रमसाध्य कार्य श्रीराम संगीत महाविद्यालय, रायपुर के सेवानिवृत्त प्राध्यापक श्री राजेन्द्र तिवारी ने किया है। – सं.)

भगवान श्रीरामभद्र की असीम अनुकम्पा से इस वर्ष भी यह सौभाग्य प्राप्त हुआ कि भगवान श्रीरामकृष्ण देव, स्वामी विवेकानन्दजी महाराज से जुड़े हुये कार्यक्रम में सम्मिलित हो सका। शब्दों के माध्यम से आपकी सेवा करने की चेष्टा की गई। सचमुच यहाँ जो प्रवचन होते हैं, वे आप लोगों को ही नहीं, मुझे भी बहुत आनन्द देते हैं। क्योंकि यद्यपि मैं वक्ता के रूप में दिखाई देता हूँ, परन्तु वस्तुत: मैं भी श्रोता ही हूँ। वैसे तो भगवत्कथा वस्तुत: सर्वत्र ही आनन्दमयी और मंगलमयी है। परन्तु हमारे निकटस्थ प्रिय शिष्य बारम्बार कहा करते हैं कि रायपुर की कथा का स्तर अन्य स्थानों से ऊँचा होता है।

इस सन्दर्भ में मुझे वह लघु गाथा याद आती है। उन दिनों तानसेन भारत में संगीत के सर्वोच्च ज्ञाता माने जाते थे। और रसिक-शिरोमणि स्वामी हरिदासजी महाराज, वृन्दावन धाम में निवास करते थे। तानसेन उन्हीं के शिष्य थे। एक बार अकबर ने तानसेन से कहा कि मैं आपके गुरुदेव का भी संगीत सुनना चाहता हूँ। अकबर को ज्ञात था कि वे यहाँ नहीं आयेंगे। तो निर्णय यही हुआ कि अकबर स्वयं वृन्दावन जाकर उनका संगीत सुनेंगे। वे वेश बदलकर तानसेन के साथ गये। और स्वामी हरिदासजी ने जब दिव्य भावरस से आप्लावित होकर अपनी संगीत-धारा प्रवाहित की, तो अकबर भी उस रस में बिल्कुल सराबोर हो गया। और उसके बाद उसने तानसेन से कहा कि आप बहुत ही सुन्दर गायन करते हैं, परन्तु आपके गुरुदेव के संगीत में जो रस है, वह तो आपसे भी बहुत विलक्षण है। इसका भला क्या कारण हो सकता है? तानसेन बोले – आप क्षमा करेंगे, मैं तो केवल देश के बादशाह को सुनाता हूँ और वे दुनिया के बादशाह को सुनाते हैं। इसलिये दोनों में अन्तर तो स्वाभाविक है।

स्तर में यदि अन्तर है, तो वह होगा ही। इसका कारण यहाँ विराजमान हमारे ये सन्तगण हैं, इनकी उपस्थिति है। हमारे परमश्रद्धेय स्वामी सत्यरूपानन्दजी महाराज इतने साधु -पुरुष हैं कि उनके सामने प्रशंसा करने में संकोच ही होता है। और ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्दजी में जो स्नेह था और उनकी जैसी विलक्षण साधनामयी, आत्मविज्ञानमयी वृत्ति थी, वह अवर्णनीय है। उन्होंने ही यहाँ कथा की परम्परा आरम्भ की थी। वस्तुत: इन सन्तों और महात्माओं की उपस्थिति का ही परिणाम है कि कथा के स्तर में भिन्नता हो जाती है। मैं यह सोचकर प्रवचन नहीं करता कि यहाँ का स्तर नीचा होना चाहिये और वहाँ का स्तर ऊँचा होना चाहिये। मैंने तो कभी विचार करने का कष्ट ही नहीं किया है। कहलानेवाले ने जब और जैसा मुझसे कहलाया, वैसा मंच पर बैठकर आपके सामने बोल गया। सम्भव है कि प्रभु ही सन्तों को देखकर स्तर कुछ और ऊँचा कर देते हों और इसीलिये लोगों को देखकर आश्चर्य होता है और वे कहते हैं कि सचमुच अन्यत्र भी आनन्द आता है, परन्तु यहाँ तो विशेष आनन्द की अनुभूति होती है।

गोस्वामीजी महाराज ने जब रचना की, तो समस्त देवताओं और मुनियों से – समस्त आराध्यों से प्रार्थना की। उन्होंने कहा – आप सब प्रसन्न होकर मुझे यह वरदान दें कि साधु-समाज में मेरी कथा का सम्मान हो –

**होहु प्रसन्न देहू बरदानू ।**
**साधु समाज भनिति सनमानू ।। १/१४/७**

और साथ ही स्पष्ट कर दिया – साधु और विवेकी जन जिस ग्रन्थ का आदर नहीं करते, वह काव्य नहीं, वह तो बालकों की तुकबन्दी मात्र है –

**जो प्रबंध बुध नहिं आदरहीं ।**
**सो श्रम बादि बाल कबि करहीं ।। १/१४/८**

मेरे लिये इससे बढ़कर सौभाग्य की बात क्या होगी कि साधु समाज में, उनके द्वारा मुझे सम्मान और स्नेह मिलता है, जिसका पात्र मैं नहीं हूँ !

सचमुच यहाँ यह जो दिव्य आयोजन होता है और फिर भगवान श्रीरामकृष्ण ! कई लोग उन्हें महान् सन्त मानते हैं, कई उन्हें अवतार मानते हैं और उनमें दोनों का ही समाहित रूप दिखाई देता है। सचमुच यदि विश्वास न हो, तो हम भगवान श्रीरामकृष्ण के जीवन और चरित्र का आनन्द नहीं ले सकते, क्योंकि उनका जीवन किसी विद्वान् का जीवन नहीं है, शास्त्र अध्ययन किये हुये व्यक्ति का जीवन नहीं है। ऐसे परिपूर्ण जीवन के प्रति आकर्षण होगा, तो श्रद्धा और विश्वास के माध्यम से ही होगा। और स्वामी विवेकानन्दजी जैसे

प्रखर बुद्धिवादी थे, उनमें उनके प्रति जिस प्रगाढ़ श्रद्धा और विश्वास का उदय हुआ, वही यह सिद्ध करता है कि हृदय में श्रद्धा और विश्वास की अनुभूति कितनी बड़ी वस्तु है !

शब्दों में तो कहा जाता था कि सारे धर्म एक हैं, सारे धर्म समान हैं, पर भगवान श्रीरामकृष्णदेव ने अवतार लेकर अपनी साधना और व्यक्तित्व के माध्यम से अपनी अनुभूतियों को संसार के लोगों के समक्ष प्रस्तुत किया। और आज उनसे जुड़ी हुई श्रद्धा-भक्ति और विश्वास की वह धारा ही इन असंख्य महापुरुषों तथा महात्माओं को सब कुछ छोड़कर लोकसेवा में, भगवत्सेवा में लगे रहने को प्रेरित कर रही है। क्या यह कभी किसी भाव की प्रेरणा के बिना, किसी श्रद्धा की प्रेरणा के बिना सम्भव होता? रामकृष्ण मिशन और ये महात्मा और ब्रह्मचारी – यह सब इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण हैं कि सचमुच अवतार या सन्तत्व का जो एक दिव्य प्रकाश होता है, वह काल तथा व्यक्ति के जीवन को सतत आलोकित करता रहता है। ऐसे दिव्य परिवेश में बोलने का अवसर स्वयं में एक विशेष अनुभूति है। आप लोगों ने बड़ी संख्या में उपस्थित होकर बड़ी शान्ति और एकाग्रता से कथा-श्रवण किया, यह यही सिद्ध करता है कि सचमुच यहाँ की भूमि आध्यात्मिक है और उस भावना से आप प्रेरित और अनुप्राणित हैं। आप सबके प्रति मेरा हार्दिक प्रणाम-नमन।

रामकथा तो अनन्त है, कभी समाप्त होती नहीं, आज मैं संक्षेप में कहना चाहूँगा। आपने जो संक्षेप में पिछले दिनो की कथाओं का संकेत-सूत्र सुना है, उससे जोड़कर आपके सामने बात रखी जायेगी। और जैसा कि मैंने कहा कि यह कोई मेरी तपस्या, साधना या विद्वत्ता का परिणाम नहीं है। सचमुच मैं तो एक शून्य यंत्र हूँ, जिसके माध्यम से प्रभु ही अपने रहस्यों का उद्घाटन कराते हैं। इसलिये आप उसी रूप में इसे ग्रहण करें। उसी से हम सबको लाभ होगा।

प्रभु महर्षि वाल्मीकि से पूछते हैं – आप मेरे लिये कोई ऐसा स्थान बताइये, जहाँ मैं जनकनन्दिनी सीता और लक्ष्मण के साथ निवास करूँ। महर्षि चौदह स्थान बताते हुए बोले – चौदह प्रकार के जो भक्त हैं, उनके हृदय में निवास कीजिये।

महर्षि कहते हैं कि ऐसे-ऐसे भक्तों के हृदय में निवास कीजिये और इससे एक प्रश्न उठता है। मनुष्य-शरीर में सबसे ऊँचा स्थान तो सिर है। तो भगवान हृदय में निवास करें या सिर में निवास करें ! महर्षि ने यह नहीं कहा कि आप ऐसे भक्तों के मस्तिष्क में निवास कीजिये। वैसे कुण्डलिनी की धारणा में बड़ी अनोखी दृष्टि दी गई है। उसमें जो चक्र का निरूपण है, उसमें सिर में सहस्रदल कमल की भावना की गई। पर सहस्रदल पद्म में निवास करनेवाले गुरुदेव हैं। हृदय में प्रभु का निवास और सहस्रदल पद्म में गुरुदेव का निवास है। इसका अभिप्राय है कि गुरुदेव के द्वारा ज्ञान प्राप्त होता है। किसी भी वस्तु को हम ग्रहण करते हैं, तो उसका माध्यम बुद्धि ही होता है। इसीलिये उनका स्थान सर्वोच्च है। पर उसकी समग्रता और सार्थकता तो तब है, जब हमारे हृदय में भगवान का निवास हो, उनके होने की अनुभूति हो। अतः गुरुदेव की भूमिका भगवान से पहचान करा देने की है। वह प्रसिद्ध दोहा आपने सुना होगा –

**गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काको लागूँ पाँय ।**
**बलिहारी गुरुदेव जिन, गोविन्द दियो लखाय ।।**

'गुरु बिन होइ कि ज्ञान –' गुरु की भूमिका यह है कि वे परम प्रकाशक प्रभु को देखने की दृष्टि प्रदान करते हैं, पर अन्ततोगत्वा महत्त्व तो ईश्वर का है। इसलिये रामायण में बड़ी अनोखी बात कही गई है। कहीं यह भी कहा गया –

**तुम्हते अधिक गुरुहि जिय जानी ।**

स्वयं महर्षि वाल्मीकि ने भी ऐसा ही कहा। पर भगवान शंकर ने कथा सुनाते हुये यह कहा – हे पार्वती, प्रभु से बढ़कर हितैषी गुरु-माता-पिता-बन्धु – कोई नहीं है –

**उमा राम सम हित जग माहीं ।**
**गुरु पितु मातु बन्धु प्रभु नाहीं ।। ४/१२/१**

बड़ा विरोधाभास लगता है। एक में कहा गया, गुरुदेव बड़े हैं और दूसरे में वे कहते हैं कि गुरु भी प्रभु के समान हितैषी नहीं है। यह बड़ा विस्तृत प्रसंग है, पर इसका सूक्ष्म तत्त्व यही है कि जब हम भगवान को पहचानते नहीं, जानते नहीं, देख पाते नहीं, तो जो हमें दृष्टि देते हैं, जिनके माध्यम से हम भगवान को समझ पाते हैं, उन्हें भगवान से भी बड़ा मानना, यह साधना का परम सत्य है, पर लक्ष्य तो ईश्वर हैं।

इसमें बड़ा संकेत है। यह वाक्य भगवान शंकर ने ही क्यों कहा? यह किसी अन्य पात्र द्वारा नहीं कहा गया। अन्य पात्रों ने तो गुरुदेव को ही बड़ा बताया। संकेत यह है कि वस्तुतः समस्त ब्रह्माण्ड के, त्रिभुवन के गुरु शंकरजी ही हैं। इसका अभिप्राय यह है कि सारा संसार भले ही गुरु को बड़ा कहे, पर सच्चा गुरु तो स्वयं को नहीं, भगवान को ही बड़ा बतायेगा। दूसरे लोग उन्हें मानें अपनी श्रद्धा से, पर गुरुदेव तो उसे ईश्वर की ओर ले जाना चाहेंगे। वे मानो चाहते हैं कि हम ईश्वर को प्राप्त करें और इसीलिये शंकरजी पार्वजी से वैसा कहते हैं। वह गुरुनिन्दा नहीं है, वरन् उसका तात्पर्य यह है कि गुरु के रूप में गुरु का तो यह अधिकार ही नहीं है कि शिष्य को वह अपनी ओर केन्द्रित करे, वह तो शिष्य को भगवान की दिशा में ले जाय, यही गुरु का गुरुत्व है। और इस दृष्टि से उन दोनों वाक्यों की संगति है।

आप उस उपाख्यान से परिचित होंगे – जब बलि ने स्वर्ग पर अधिकार कर लिया, तो इन्द्र व्याकुल हो गये। उन्होंने अपना राज्य पाने के लिये व्यग्र होकर साधना की और तब इन्द्र की माँ के गर्भ से ही भगवान विष्णु ने वामन-रूप में

जन्म लिया। और तब उन्होंने यही कहा कि मैं बलि से भिक्षा माँगकर, दान लेकर तुम्हारा राज्य तुम्हें लौटाऊँगा। भगवान के लिये यही स्वाभाविक था, क्योंकि बलि कोई साधारण व्यक्ति नहीं, अपितु दैत्यों के राजा होने के साथ-साथ भक्त-शिरोमणि प्रह्लाद के पौत्र थे, इसलिये भगवान कल्पना ही नहीं कर सकते थे कि बलि को परास्त करके मैं राज्य छीन लूँ। इसीलिये जब बलि का यज्ञ चल रहा था, तो भगवान वामन के रूप में पधारे। वामन बड़े तेजस्वी थे, पर शरीर नन्हा-सा था। बलि को आश्चर्य हुआ। उन्होंने वामन का पूजन किया और कहा कि आप जैसे ब्रह्मचारी का तो दर्शन कभी हुआ ही नहीं। आज्ञा दीजिये, क्या चाहते हैं?

बलि के गुरु शुक्र थे। देवताओं के गुरु बृहस्पति और दैत्यों के गुरु शुक्र। विद्वत्ता में बृहस्पति से शुक्र बहुत आगे हैं। पुराणों की भाषा को पढ़ें, तो शुक्र को मृतसंजीवनी विद्या का ज्ञान था, बृहस्पति को नहीं था। मृत को भी जीवित कर देते थे। पर इतना होते हुये भी हम शुक्र की अपेक्षा बृहस्पति को अधिक सम्मान देते हैं। इसका कारण क्या है? वृत्ति में भेद के कारण बृहस्पति वन्दनीय हैं। शुक्र भले ही हमारे लिये आदर के पात्र हों, पर वे हमारे आदर्श नहीं हैं। बलि ने कहा कि आप जो भी माँगेंगे, मैं दूँगा। पर शुक्राचार्य तो बड़ी अनोखी दृष्टि वाले थे, पहचान गये कि ये तो भगवान विष्णु हैं, वामन के रूप में आये हैं और निश्चित रूप से बलि का सारा राज्य ले लेंगे। उन्होंने धीरे से बलि के जाँघ का स्पर्श करके कहा – चलो, एकान्त में तुमसे कुछ कहना है। निर्जन में ले जाकर शुक्राचार्य ने कहा – जानते हो, ये कौन हैं? बलि ने कहा – कोई तेजस्वी ब्रह्मचारी हैं। – ये तेजस्वी ब्रह्मचारी नहीं, स्वयं भगवान विष्णु हैं। और जानता है? तेरा राज्य दान में लेकर, छीनकर इन्द्र को दे देंगे। जाकर कह दे कि नहीं दूँगा। गुरु ने शिष्य को ऐसी शिक्षा दी।

पर शिष्य गुरु से आगे निकला। उसने कहा – "आपके जैसा गुरु पाकर मैं धन्य हो गया। भगवान पधारे और मैं नहीं पहचान पाया। आपने पहचान लिया। गुरुदेव, आप ही तो बार-बार ग्रन्थों से निरूपित करते हैं, कहते हैं कि भगवान सर्वशक्तिमान हैं। तो सर्वशक्तिमान भगवान, सर्वसमर्थ भगवान यदि चाहते, तो छीनकर भी मेरा राज्य इन्द्र को दे सकते थे। पर कितनी बड़ी कृपा है कि वे माँगनेवाले बनकर मुझे दानी कहलाने का सौभाग्य प्रदान कर रहे हैं। ऐसी स्थिति में तो मैं यही समझता हूँ मुझे दे देना चाहिये।

गुरुजी को क्रोध आ गया। क्यों आ गया? गुरु को ही शिष्य के राज्य से आसक्ति थी कि मेरे शिष्य का राज्य चला जायेगा, तो मेरी जो सुख-सुविधा है, मेरी जो सेवा है, उसमें अन्तर आ जायेगा। बस, यही कमी उन्हें वह कहने के लिये प्रेरित करती है, जो वस्तुत: गुरु को नहीं कहनी चाहिये। गुरु तो शिष्य को भगवान के प्रति समर्पण की शिक्षा देता है। जब उन्होंने बलि को दान देने से मना किया, तो बलि ने कहा – नहीं महाराज, मुझे तो लगता है कि मैंने देने का जो वचन दिया है, उसे पूरा करूँ।

गुरु को क्रोध आ गया। बोले – मैंने तेरे हित की बात कही, तू नहीं मानता तो जा तेरी सम्पत्ति नष्ट हो जाय। बलि के होठों पर मुस्कुराहट आई। बोले – गुरुदेव, अभी तो आप मेरी सम्पत्ति बचाना चाहते थे, पर आपके मुँह से भी वही निकला, जो भगवान चाहते हैं। उन्होंने कहा – तू मूर्ख है, मैंने क्रोध में कह दिया। और वे अन्तिम क्षण तक शिष्य की सम्पत्ति बचाने के लिये बड़े व्यग्र थे। वे जानते थे कि विधान यह है कि कोई भी दान दिया जाता है, तो संकल्प लिया जाता है, परन्तु यजमान के स्थान पर जब स्वयं ईश्वर ही संकल्प कर ले, तो कोई और क्या संकल्प कर सकता है। यह एक बड़ी विडम्बना है। जैसे माता-पिता क्रोध में आते हैं, तो कुछ भी कह देते हैं – मर जा, तेरा सिर फूटे, तेरा नाश हो। कुछ भी कह देते हैं, लेकिन बच्चे को जरा-सा कष्ट हो जाता है, तो बेचैन हो जाते हैं, क्योंकि ममता बड़ी प्रबल होती है। तो संकल्प लेने के लिये जिस कमण्डलु में जल लाया गया, उसकी छेद में शुक्राचार्य बैठ गये। उन्होंने सोचा – कमण्डलु से जल गिरेगा ही नहीं, तो संकल्प भी नहीं बोला जायेगा और यह दान भी नहीं होगा।

व्यक्ति जब आसक्त हो जाता है, तो ऐसी ही हास्यास्पद कल्पना करता है, पर शुक्राचार्य जैसे विद्वान् को नहीं करनी चाहिये थी। संकल्प में यजमान के हाथ में जल, अक्षत आदि के साथ कुश भी दिया जाता है। और जब जल नहीं गिरा, तो कौतुकी वामन भगवान बोले – लगता है जल के छिद्र में कोई अवरोध आ गया है। उन्होंने तत्काल बलि के हाथ से कुश ले लिया और उस छिद्र में डाला। वह जाकर शुक्राचार्यजी की आँख में जा घुसा। वे तो बिचारे वहाँ से निकलकर भागे। बड़ा अनर्थ हुआ – शुक्राचार्य की एक आँख फूट गयी। वे एकाक्ष हो गये। कमण्डलु का जल गिरने लगा। भगवान ने संकल्प पढ़ा। कथा बड़ी लम्बी है।

बाद में शुक्रचार्य ने प्रभु को उलाहना दिया – महाराज, आपने यह मेरी एक आँख क्यों फोड़ दी? भगवान हँसकर बोले – आपकी एक आँख तो पहले से ही फूटी थी, मैंने उस फूटेपन को दिखा भर दिया। – कैसे? बोले – आप महापुरुष हैं और महापुरुष की दो आँखें होती हैं, केवल बाहर ही नहीं भीतर भी, और वे दो आँखें होती हैं – एक तो ज्ञान की और दूसरी वैराग्य की –

**ग्यान बिराग नयन उरगारी। ७/१२०/१४**

आपका ज्ञानवाला नेत्र तो बड़ा तेज है। देखते ही मुझे पहचान लिया। इसलिये लगा कि ज्ञान की दृष्टि तो है। पर

लगता है कि वैराग्य की आँख नहीं रही होगी, तभी तो चेले से कहा कि दान मत करो। वैराग्य होता, तो प्रसन्न हो जाते कि ईश्वर आये हुए हैं, समर्पण कर दो। इसलिये मैंने सोचा कि भीतर से तो आप एकाक्ष हैं ही, बाहर भी लोगों को पता चल जाय कि आप वैराग्य शून्य हैं।

और व्यंग्य क्या है? भगवान चाहते तो किसी अन्य शस्त्र के द्वारा आँख पर प्रहार कर सकते थे। तो फिर उन पर उस कुश से प्रहार क्यों किया? भगवान हँसकर बोले – महाराज, नेत्र आपका फूटा, तो आपकी कुशाग्रता के कारण फूटा। कुश का अगला भाग बड़ा पैना होता है। यदि आप इतने कुशाग्र-बुद्धि न होते कि मुझे पहचान पाते, तो यह संकट न आता। पर आप कुशाग्र-बुद्धि का दुरुपयोग कर रहे थे, उसी का यह परिणाम है। गोस्वामीजी भी एक पद में कहते हैं – जिसे श्रीराम और सीताजी प्रिय नहीं लगते, वह चाहे जितना भी निकट सम्बन्धी क्यों न हो, उसे करोड़ों शत्रुओं के तुल्य मानकर उसका त्याग कर देना चाहिये –

**जाके प्रिय न राम बैदेही।**
**तजिये ताहि कोटि बैरी सम**
**जद्यपि परम सनेही।। विनय. १७४**

किसे-किसे छोड़ देना चाहिये? – पिता को। पितृभक्ति एक महान् गुण है, परन्तु प्रह्लाद ने पिता के आदेश को स्वीकार ही नहीं किया। विभीषणजी ने अपने बड़े भाई को छोड़ दिया। वह भी बड़े महत्त्व का सम्बन्ध है। सन्त-शिरोमणि भरतजी महाराज ने तो कैकेयी को आजीवन 'माँ' कहकर पुकारा ही नहीं, पूरी तौर से परित्याग कर दिया। गोपियों ने पतियों का भी परित्याग कर दिया। और कहा – बलि ने गुरु के आदेश को अस्वीकार कर दिया –

**तज्यो पिता प्रह्लाद, विभीषण बंधु, भरत महतारी।**
**बलि गुरु तज्यो, कंत ब्रज बनितन्हि,**
**भये मुदमंगलकारी।।**

जीवन का मूल लक्ष्य ईश्वर को ही प्राप्त करना है। और गुरु की भूमिका मुख्यत: वही है और उस सन्दर्भ में वह भगवान से अभिन्न भी है और भगवान से बड़ा भी है, परन्तु इतना बड़ा तभी है, जब वह हमारे अन्तर्हृदय में ईश्वर को प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न करे। यहाँ पर भी वाल्मीकिजी जब भगवान राम से कहते हैं कि इनके हृदय में निवास कीजिये, तो उसका अभिप्राय क्या है? यों तो ईश्वर सर्वव्यापक हैं। क्या कान में नहीं हैं? सिर में नहीं हैं? शरीर में नहीं हैं? रोम-रोम में नहीं हैं? पर वहाँ मुख्य संकेत यह है कि हमारे हृदय में उनकी उपस्थिति का भान और विश्वास होना चाहिये, क्योंकि ज्ञान का फल विश्वास है। ज्ञान का फल संशय और कुतर्क नहीं है और इसीलिये 'मानस' में भक्ति का क्रम बताते हुए कहा गया है – जाने बिना सच्चा विश्वास नहीं होता –

**जाने बिनु न होइ परतीती।। ७/८८/७**

इसीलिये ज्ञान का फल भी विश्वास ही है। पर प्रश्न उठ सकता है कि ज्ञान तो बुद्धि के द्वारा होगा; और प्रारम्भ तो ज्ञान से ही होगा। ज्ञान के द्वारा ही भगवान की प्रभुताई जानी जायेगी। पर वहाँ कह दिया गया – ठीक है, बुद्धि के द्वारा हम उनके प्रभाव को जानेंगे, परन्तु कैसे जानेंगे? बुद्धि क्या अपने पुरुषार्थ के माध्यम से जानेगी? गोस्वामीजी ने कहा – जब वह परम कृपा करता है तो स्वयं जना देता है –

**राम कृपा बिनु सुन खगराई।**
**जानि न जाइ राम प्रभुताई।। ७/८९/६**
**सोइ जानइ जेहि देहु जनाई।।**

और उसे जान लेने के बाद? ज्ञान का फल क्या है? गीता में भी भगवान यही सूत्र देते हैं – उसके बाद वह प्रभु में प्रवेश करता है और प्रभु उसमें प्रविष्ट होते हैं –

**ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्। १८/५५**

सत्य यही है कि बुद्धि के द्वारा माना गया अथवा केवल बुद्धि के द्वारा जाना गया सत्य तर्कसंगत लग सकता है, पर स्थाई नहीं होता। इसी बात पर भगवान शंकर और श्रीराम के बीच एक बड़ा मधुर और रसपूर्ण विनोद हुआ। पार्वतीजी तपस्या कर रही हैं। भगवान शंकर समाधि में हैं। भगवान ने उन्हें अन्तर्मुख से बहिर्मुख किया। समाधि अन्तर्मुखता है। तो भगवान जान-बूझकर बाहर आ गये। बाहर आने का अर्थ है कि जब मैं बाहर भी हूँ, तो भीतर ही क्यों। नेत्र खोलकर देखा तो भगवान खड़े हैं। प्रभु ने बड़े प्रेम से उन्हें कहा – पार्वती कितनी महान् है, उनका कैसा चरित्र है, कैसी तपस्या है, कितनी श्रद्धा है, कितनी सात्त्विकता है! और मैं आपसे यही माँगने के लिये आया हूँ। क्या?

**अब बिनती मम सुनहु सिव,**
**जौं मो पर निज नेहु।। १/७६**

पहले तो भगवान ने शंकरजी से पूछा – आप मुझसे क्या नाता मानते हैं? तो रामायण में तीन नाते बताये गये हैं – शंकरजी भगवान राम के सेवक भी हैं, भगवान राम के स्वामी भी हैं और भगवान राम के सखा भी हैं –

**सेवक स्वामि सखा सिय पी के।। १/१५/३**

भगवान शंकर से कोई पूछे कि श्रीराम आपके कौन हैं? तो वे कहेंगे – भगवान राम मेरे स्वामी हैं। और श्रीराम से कोई पूछे कि भगवान शंकर आपके कौन हैं? तो वे कहेंगे – मेरे स्वामी हैं। अन्य मुनियों से पूछे तो वे तो कहेंगे – दोनों एक ही तो हैं, अभिन्न हैं, दो नहीं हैं। तो भगवान राम ने कहा – अच्छा तीनों नातो से मेरी बात मान लीजिये। मैं तो आपको स्वामी मानता हूँ। तो स्वामी को सेवक की प्रार्थना सुननी चाहिये। इसलिये – मैं आपसे विनती करता हूँ।

शंकरजी ने कहा – नहीं। भगवान बोले – अच्छा मित्र

तो हैं ! मित्रता का नाता भी तो माने तो मैं मित्र-प्रेम के नाते कह रहा हूँ। शंकरजी बोले – नहीं महाराज, मैं तो आपका मित्र नहीं, सेवक हूँ। भगवान ने मुस्कुराकर कहा – चलो, अब तो और सुविधा हो गई। सेवक के रूप में तो प्रार्थना करनी पड़ती। मित्र के रूप में मित्रता की दुहाई देनी पड़ती, पर जब आप सेवक हैं, तो मुझे आज्ञा देने का अधिकार है। भगवान ने तीनो नातों के लिये तीन शब्द कहे। और अन्त में कहा – यदि आप सेवक हैं, तो मैं आज्ञा देता हूँ कि जाकर पार्वतीजी से विवाह कीजिये –

**जाइ बिबाहहु सैलजहि ... ।। १/७६**

शंकरजी संकोच में पड़े। उन्हें अच्छा नहीं लग रहा है। कहाँ तो वे समाधि में हैं और प्रभु कहते हैं – विवाह कीजिये। बोले – महाराज, ठीक है, समझ में तो नहीं आ रहा है, पर आप बड़े हैं, आपकी आज्ञा सिर-माथे पर –

**कह सिव जदपि उचित अस नाहीं**
**नाथ बचन पुनि मेटि न जाहीं ।।**
**सिर धरि आयसु करिअ तुम्हारा ।**
**परम धरमु यह नाथ हमारा ।। १/७७/१-२**
**अग्या सिर पर नाथ तुम्हारी १/७७/४**

सिर पर कोई बात रखना बहुत बड़ी बात है। सुनते ही भगवान ने कहा – मेरी आज्ञा सिर पर मत रखिये। मैंने जो कहा उसे सिर पर नहीं, हृदय में धारण कीजिये –

**अब उर राखेहु जो हम कहेऊ ।। १/७७/६**

इसका अर्थ है कि बुद्धि से मानी हुई बात, बुद्धि में धारण की हुई बात भूल जाती है। परन्तु हृदय में जब कोई बात आ जाय, तो फिर उसे याद दिलाना ही नहीं पड़ता। आप देखेंगे, जब बुद्धि से कोई बात कही जाती है, तो बार-बार विस्मरण हो जाता है, तर्क-वितर्क भी उठता है। और हृदय में यदि कोई बात समा गई हो, तो उसका परिणाम यही होता है कि यदि उसे याद न करें, तो भी याद आती है। व्यक्ति हर क्षण उसी याद में डूबा रहता है। इसलिये भगवान कहते हैं – मेरी बात को हृदय में रखिये। परन्तु आगे चलकर शंकरजी न तो विवाह करने के लिये गये, न उसके लिये कोई चेष्टा ही की। शंकरजी ने बात तो मान ली, पर अन्त में बात गड़बड़ा गई। शंकरजी ने आज्ञा को तो सिर पर ही रखा और हृदय में किसको रख लिया? श्रीराम की सुन्दरता को –

**संकर सोइ मूरति उर राखी । १/७७/७**

प्रभु की सुन्दरता में डूब गये, तो पार्वती की सुन्दरता की याद कहाँ से आवे? ऐसी बात नहीं कि शंकरजी ने जान-बूझकर भगवान की आज्ञा न मानी हो। उन्हें याद ही नहीं रह गया। उसी में उनको इतना रस, इतना आनन्द आया कि सब कुछ भूल गये। व्यंग्य-विनोद की भाषा में कह सकते हैं कि इसका केवल शंकरजी के मस्तिष्क का ही सम्बन्ध नहीं है। प्रभु जानते हैं कि इनके सिर पर गंगा है, मेरी आज्ञा न जाने कहाँ बह जाय। इसीलिये उन्हें याद दिलाने के लिये देवताओं को, कामदेव को बुलाना पड़ा। काम ने जाकर शंकरजी के हृदय पर प्रहार किया। क्यों किया? और शंकरजी ने काम को जला क्यों दिया? लिखा है कि काम ने अन्त में शंकरजी के हृदय में बाण का प्रहार किया और बाण का प्रहार करते ही शंकरजी के मन में क्षण भर के लिये एक वासना का उदय-सा हुआ। – अरे, यह क्या हुआ? कैसे हुआ? और तब वे देखने लगे, किसने मुझे इस समाधि की स्थिति से विरत करने की चेष्टा की? देख लिया कि काम आम के वृक्ष पर बैठा हुआ बाण का प्रहार कर रहा है। बस, तीसरा नेत्र खोलकर देखा और काम जलकर नष्ट हो गया –

**तब सिवँ तीसर नयन उघारा ।। १/८७/६**

देवता लोग कहने लगे – महाराज, क्रोध मत कीजिये, मत कीजिये। परन्तु शंकरजी ने सचमुच क्रोध में काम को भस्म कर दिया। पूछा – महाराज, आप तो बड़े उदार हैं और सब लोग कह रहे हैं कि क्षमा करें, तो भी क्यों क्षमा नहीं कर रहे हैं? शंकरजी ने कहा – यदि मेरे ऊपर प्रहार किया होता, तो मैं क्षमा कर देता, पर इसने हमारे प्रभु के निवास-स्थान पर प्रहार किया है, अत: इसे मैं बिना जलाये नहीं छोड़ूँगा। उसको दण्ड इसीलिये मिला कि जिस हृदय में प्रभु की स्थिति होनी चाहिये, तुम उसी में घुसने की चेष्टा कर रहे हो? इसलिये भक्तों ने सर्वदा बार-बार प्रभु से हृदय में निवास करने के लिये प्रार्थना की है –

**मम हृदय कंज निवास कुरु**
**कामादि खल दल गंजनम् ।।** विनय. ४५/५

यही सबसे बड़ा सत्य है, पर साधारणतया बुद्धि-विभ्रम के कारण व्यक्ति इसे स्वीकार नहीं करता। इसलिये जब पूछा गया कि भगवान की कृपा कैसे हो? प्रभु-कृपा के लिये हमें अपने आप में और कौन-सी विशेषता लानी होगी? तो कैसी अनोखी बात कही गयी है ! बोले – उनकी कृपा पाने के लिये कुछ लाना नहीं है। जो है, उसे छोड़ना है। मन, कर्म, वचन से चतुराई छोड़ दो, तो कृपा आ जायेगी –

**मन क्रम बचन छाड़ि चतुराई ।**
**भजत कृपा करिहहिं रघुराई ।। १/२००/६**

वस्तुत: यह कृपा और हृदय का जो सत्य है, वह गणित का सत्य नहीं है। उसे गणित के क्रम से नहीं समझा जा सकता। विज्ञान की समस्या यह है कि वह प्रत्येक वस्तु को गणितीय नियमों की दृष्टि से देखता है और संसार की अधिकांश चीजें गणित के नियम के अनुकूल चलती दिखाई देती हैं। पर ईश्वर और उनकी कृपा किसी गणित के नियम से चलनेवाली नहीं है कि वे कब, किस पर, किस रूप में कृपा करेंगे। ❖ **(क्रमश:)** ❖

# चुगलखोरी का दोष

*स्वामी आत्मानन्द*

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्द जी ने आकाशवाणी के चिन्तन कार्यक्रम के लिए विविध विषयों पर अनेक विचारोत्तेजक लेख लिखे थे, जो उसके विभिन्न केन्द्रों द्वारा समय-समय पर प्रसारित किये जाते रहे हैं तथा काफी लोकप्रिय हुए हैं। प्रस्तुत लेख आकाशवाणी, रायपुर से साभार गृहीत हुआ है। - सं.)

उस दिन मैं अपने मित्र के यहाँ बैठा हुआ था। वे एक उच्च पदस्थ अधिकारी हैं। उनके पास एक सज्जन आये। मैं उनसे परिचित नहीं था। मित्र ने परिचय करा दिया। वार्तालाप के सिलसिले में आगन्तुक ने कहा, ''अमुक तो आप पर बड़ा नाराज हो रहा था, क्या बात है?'' मित्र उत्तर में बोले, ''भला वे मुझ पर क्यों नाराज होंगे? नाराजगी का तो कारण नहीं होना चाहिए।'' आगन्तुक बोले, ''वे कह रहे थे कि देखो तो, मैंने एक छोटा सा काम उन्हें दिया, वह भी वे नहीं कर सके।''

मित्र ने पूछा, ''आपसे उन्होंने यह बात कब कही?''

''अभी कुछ देर पहले ही। उनसे मिलकर ही तो यहाँ आ रहा हूँ''- आगन्तुक का उत्तर था।

मित्र बोले, ''यह भला कैसी बात है? मैंने परसों ही उनका काम कर दिया था और शासकीय आदेश स्वयं उनके हाथ दे दिया था। मैं फोन करके अभी पूछे लेता हूँ कि बात क्या है।''

आगन्तुक का चेहरा देखने लायक था। मित्र फोन करने गये और आगन्तुक उठकर चलते बने। फोन करके लौटकर मित्र ने बताया कि आगन्तुक बड़ा झूठा था, जिसका नाम लेकर उसने चुगली की उसके यहाँ वह कई दिनों से गया ही नहीं है। मित्र को फोन पर यह भी बताया गया कि आगन्तुक बड़ा ही चुगलखोर है और उससे सावधान रहना चाहिए।

यह एक उदाहरण है। ऐसे कितने उदाहरण आपके और हमारे जीवन में भरे पड़े होंगे। चुगली एक रोग है, मनोवैज्ञानिक ग्रन्थि है। इस रोग से ग्रस्त व्यक्ति को तोड़ने में सुख का अनुभव होता है। उसे दो व्यक्तियों का आपसी प्रेम और सद्भाव आँख की किरकिरी मालूम होती है।

चुगली मिथ्या के घोड़े पर चढ़कर कलाबाजी करती है। मनुष्य इस कदर आत्म-प्रशंसा-प्रिय होता है कि तनिक-सा कटाक्ष का स्वर, आलोचना की धीमी-सी फुहार भी आहत कर देती है। मैं यदि लेखक हूँ, तो अपने लेख की प्रशंसा सुनना चाहता हूँ। यदि कवि हूँ, तो मेरे कान कविता का गुणगान सुनने में ही लगे रहेंगे। यदि वक्ता हूँ, तो सदा यही चाहूँगा कि लोग मेरे भाषण की प्रशंसा करें। यदि कलाकार हूँ तो अपनी कला की बड़ाई सुनने की ओर ही मेरा ध्यान रहेगा। व्यक्ति किसी भी क्षेत्र में कार्यरत हो, वह अपने कार्य की, कार्य करने के तरीके की प्रशंसा सुनना चाहेगा। यह कोई अस्वाभाविक वृत्ति नहीं है। मनुष्य का मन ही ऐसा बना है कि वह आत्मप्रशंसा सुनना चाहता है। चुगली की प्रक्रिया मनुष्य-मन के इसी स्वभाव को लेकर खेलती है और अपना प्रभाव विस्तार करती है। मनुष्य अपनी कमियों की सही आलोचना भी सुनना नहीं चाहता - उसका यह स्वभाव चुगली के पौधे में पानी सींचने का काम करता है, और यही चुगलखोर की सबसे बड़ी सम्पत्ति है। इस सम्पत्ति के जोर पर चुगलखोर हमारे मन को मानो अपने वश में कर लेता है और जैसा वह चाहता है वैसा देखने को हमें विवश करता है। फलस्वरूप हम उसकी बातों में आ जाते हैं और सत्य की पूरी तरह उपेक्षा करते हुए अपने निर्दोष मित्र से कटकर अलग हो जाते हैं। परिवार के स्तर पर, परिवार को तोड़नेवाली सबसे खतरनाक ताकत चुगली की ही है। ननद चुगली के बल पर भौजाई को उसकी सास से तोड़ देती है। पत्नी इसी के चलते पति को उसकी माँ से अलग कर देती है। बाप और बेटे एक दूसरे के शत्रु बन जाते हैं। भाई-भाई एक दूसरे का सिर फोड़ने पर उतारू हो जाते हैं।

तो, क्या इस रोग की दवा नहीं है? है - और वह रामबाण दवा है। जैसे आयुर्वेद में औषध और उसका अनुपान होता है और दोनों मिलकर ही रोग पर कारगर होते हैं, वैसे ही यह रामबाण दवा अपने अनुपान के साथ ही काम करती है।

दवा है - जिस व्यक्ति के बारे में चुगली की गयी, उससे बिना संकोच के पूछना कि क्या उसने ऐसा कुछ कहा है। और अनुपान यह है कि चुगली करने वाले के सामने ही पूछा जाय। आप अनुभव करेंगे कि रोग एक बार ही जड़ से मिट गया है।

एक दूसरी दवा से भी चुगली का दंश मिटाया जा सकता है। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर से किसी ने चुगली करते हुए कहा, ''महाशय, अमुक तो आपकी बड़ी निन्दा कर रहा था।'' विद्यासागर बोले, ''भाई, मुझे तो ख्याल नहीं आता कि मैंने उसका कुछ भला किया हो, फिर वह मुझे क्यों गालियाँ देता है?'' चुगली करने वाला बगलें झाँकने लगा, उससे कोई उत्तर देते न बना। यह भी चुगली की एक अनुभूत कारगर दवा है।

❑❑❑

# समृद्धि की आधार-शिला (१)

*स्वामी सत्यरूपानन्द*

(श्री संत गजानन संस्थान अभियांत्रिकी महाविद्यालय, शेगाँव, महाराष्ट्र में स्वामी सत्यरूपानन्द जी पिछले कई वर्षों से वहाँ के विद्यार्थियों के मध्य व्याख्यान देने जाते रहे हैं। कभी-कभी उन्होंने वहाँ के विद्यार्थियों के लिये अंग्रेजी भाषा में व्यक्तित्व विकास सम्बन्धी कार्यशालाएँ भी आयोजित की थीं, जिनमें दिये गये कुछ व्याख्यानों को उक्त महाविद्यालय ने छोटी-छोटी पुस्तिकाओं के रूप में प्रकाशित किया है। उन्हीं में से एक पुस्तिका "Pillars of Prosperity" का रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर, के ब्रह्मचारी जगदीश ने 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशनार्थ हिन्दी में अनुवाद किया है। - सं.)

हम सभी मानवी क्रिया-कलाप की प्रत्येक विधा में प्रगति एवं विकास की इच्छा रखते हैं। स्वभावत: हम अपने व्यक्तित्व के सन्तुलित विकास हेतु प्रयत्नशील रहते हैं। साधारणत: विकास से हमारा अभिप्राय भौतिक समृद्धि से होता है। यह मानव में निहित एक नैसर्गिक इच्छा है। प्रश्न यह है कि हममें से ऐसा कौन है जो समृद्ध नहीं होना चाहता? नि:सन्देह हम सभी समृद्धि की आकांक्षा रखते हैं। तथापि हममें से अधिकांश समृद्धि का वास्तविक अर्थ जानने का प्रयत्न नहीं करते।

समृद्धि किसे कहते हैं? प्रचलित अर्थ में एवं विशेषत: व्यवसाय प्रबंधन के क्षेत्र में समृद्धि से अभिप्राय भौतिक समृद्धि एवं उद्यम के प्रत्येक क्षेत्र में बाह्य सफलता से होता है।

पर्यायवाची शब्दकोश में समृद्धि शब्द हेतु समानार्थी शब्दों की एक लम्बी सूची मिलती है, यथा – "धनाढ्यता, सौभाग्य, विलासिता, बहुलता, अमीरी, सफलता, खुशहाली, दौलतमन्दी, अयाचकता इत्यादि।" तथापि यह सूची सम्पूर्ण नहीं है। समृद्धि के कुछ अन्य अर्थ भी ग्रहण किये जा सकते हैं।

'समृद्धि' का प्रारम्भिक अर्थ यह लिया जा सकता है कि व्यक्ति के पास दैनन्दिन आवश्यकता की वस्तुएँ पर्याप्त मात्रा में होंगी। तथापि यह 'समृद्धि' की एक संकीर्ण परिभाषा है, क्योंकि इससे यह सुनिश्चित नहीं होता कि अमुक व्यक्ति सुगठित एवं सर्वांगीण विकसित व्यक्तित्व का धनी भी है।

यद्यपि किसी व्यक्ति ने अत्यधिक भौतिक सम्पदा एकत्रित कर ली हो तथापि वह जीवन के सांस्कृतिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक – इन अति महत्त्वपूर्ण पक्षों में अत्यन्त विपन्न हो सकता है। यदि व्यक्तित्व सन्तुलित एवं परिपक्व नहीं है, तो कितने भी परिमाण में अर्जित सफलता अथवा धनाढ्यता उस व्यक्ति को शान्ति एवं सुख प्रदान नहीं कर सकेंगी जो कि प्रबन्धन का एक प्रधान लक्ष्य है। उसे परिणाम में मात्र दु:ख एवं कष्ट ही प्राप्त होगा।

### मार्ग-दर्शक जीवन-सिद्धान्त

सुगठित व परिपक्व व्यक्तित्व के आकांक्षी व्यक्ति का जीवन -लक्ष्य स्फटिकवत् स्पष्ट होना चाहिए। प्रबन्धन में सफलता हेतु व्यक्ति की परिपक्वता एक अनिवार्य आवश्यकता है।

प्राचीन भारतीय मनीषा कहती है कि समृद्धि का मात्र एक ही हेतु है – सम्पूर्ण समाज का सुख – अर्थात् सर्वजन-हिताय। यदि व्यक्ति का जीवन मूल्यों पर आधारित नहीं है, तो इस लक्ष्य का चरितार्थ हो पाना असम्भव है।

मानव जीवन दो प्रकार के मूल्यों से निर्दिष्ट होता है –

१. भोगवादी सांसारिक मूल्य एवं २. आध्यात्मिक मूल्य।

भोगवादी सांसारिक मूल्यों में आस्थावान व्यक्ति की धारणा होती है कि मात्र भौतिक सम्पदा अर्जन द्वारा ही सम्पूर्ण समाज सुख एवं संतोष प्राप्त कर सकता है। भोगवादियों का विश्वास है कि मूलत: मनुष्य एक भोक्ता है तथा यह जीवन भौतिक पदार्थों के भोग हेतु ही है। उनके मतानुसार मनुष्य स्वयं मात्र पदार्थ से ही निर्मित है अत: उसकी आवश्यकताएँ भी पदार्थ आधारित हैं। ऐसे व्यक्ति प्रबन्धन के उसी तंत्र को सर्वश्रेष्ठ मानते हैं जो किसी व्यक्ति की प्रत्येक भौतिक आवश्यकता को पूर्ण करने में सक्षम हो तथा उसकी क्षमता एवं कार्य-कौशल को आधार बनाकर संसाधनों के न्यायोचित वितरण को सुनिश्चित करता हो। उनकी यह धारणा होती है कि मात्र भौतिक संसाधनों के कुशल एवं प्रभावी प्रबन्धन से ही मानव-जीवन के प्रत्येक दु:ख एवं समस्या का समाधान किया जा सकता है। भोगवादी विचारधारा के पक्षधर व्यक्ति मनुष्य के नैतिक एवं आध्यात्मिक आयामों पर विचार ही नहीं करते। अधिक हुआ तो वे मात्र कुछ सामाजिक एवं राजनैतिक मूल्यों का समर्थन कर अपने विचारों की उदात्तता का सीमांकन कर लेते हैं।

हमारा अनुभव यह प्रमाणित करता है कि प्रबन्धन की उपरोक्त भोग-केन्द्रित विचारधारा मानव को शान्ति एवं सन्तुष्टि प्रदान करने में पूर्णत: असफल रही है। भोगवादी विचारधारा ने व्यक्ति के तनाव एवं उद्वेग के स्तर में वृद्धि ही की है। उसने समाज में प्रतिस्पर्धा व ईर्ष्या का विस्तार ही किया है।

आध्यात्मिक-मूल्य-केन्द्रित विचारधारा मनुष्य में भौतिक आयाम के अतिरिक्त अन्य आयाम की उपस्थिति भी स्वीकार करती है। मनुष्य के व्यक्तित्व में भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों ही आयाम समाहित हैं। आध्यात्मिक मूल्यों के प्रति आस्थावान यह विचारधारा मनुष्य को मूलत: एक आध्यात्मिक सत्ता मानती है, जिस पर नैतिक मूल्यों के संस्कारों की गहन छाप होती है। अध्यात्मवादियों के मतानुसार आध्यात्मिक

एवं नैतिक मूल्य वास्तव में भोग-मूलक भौतिक मूल्यों से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। अध्यात्मवाद में आस्थावान व्यक्ति नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों के महत्व को मानव के सुगठित विकास एवं सन्तुष्टि हेतु उतना ही महत्वपूर्ण आँकते हैं जितना कि भौतिक मूल्यों के महत्व को। इनके मतानुसार, भौतिक-समृद्धि एवं विपुलता को केवल आध्यात्मिक एवं नैतिक मूल्यों द्वारा ही निर्देशित एवं निर्दिष्ट होना चाहिये।

भोगवादियों के द्वारा समर्थित मात्र सामाजिक-राजनैतिक मूल्य पार्थिव समृद्धि को निर्देशित एवं निर्दिष्ट नहीं कर सकते। आध्यात्मिक एवं नैतिक मूल्यों से विच्छिन्न भौतिक समृद्धि का अनियन्त्रित अर्जन अन्ततोगत्वा व्यक्ति एवं समाज के लिये चिन्ता, सन्ताप एवं क्लेश का कारण बनता है।

प्रेरणा व्यवसाय-प्रबन्धन का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण पक्ष है। ऐसा लक्ष्य जो व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन पर विचार करता हो, चित्ताकर्षक हो, कल्याणप्रद हो, मात्र वह ही दीर्घकाल पर्यन्त उसे प्रस्तुत कार्य के निष्पादन में प्रेरित एवं उत्साहित रूप से संलग्न रख सकता है।

भोगवादी मूल्यों पर आधारित प्रेरणा अल्प-कालिक होती है। एक लक्ष्य की प्राप्ति के उपरान्त तुरन्त ही व्यक्ति पुन: शून्यता-बोध से घिर जाता है। वह स्वयं से प्रश्न कर उठता है – ''इस उपलब्धि से मेरे जीवन के किस उद्देश्य की पूर्ति हुई? मुझे क्या मिला?''

प्रत्येक विचारशील व्यक्ति को इन प्रश्नों का उत्तर प्राप्त करना ही होगा। यथा – ''मेरे जीवन का क्या अर्थ है अथवा क्या प्रयोजन है?'' ''मेरी व्यावसायिक, आर्थिक अथवा वाणिज्यिक उपलब्धियाँ मुझे पूर्णता-बोध एवं सन्तुष्टि प्रदान करने में कहाँ तक सक्षम हैं?'' आदि।

व्यक्ति के वाणिज्यिक एवं व्यावसायिक मामलों के प्रबन्धन में मात्र भोग-क्रेन्द्रित मूल्यों पर अवलम्बन पर्याप्त नहीं है। प्रबन्धक को आवश्यकता होने पर समस्याओं के निराकरण हेतु अपने अधिनस्थों एवं सहयोगियों से विचार विमर्श करना अनिवार्य हो जाता है। उन महत्वपूर्ण क्षणों में उसे प्रभावशाली होने के लिये प्रेम, नि:स्वार्थता, प्रत्युपकार रहित परोपकार एवं समाजहितार्थ सत्कार्यों आदि अध्यात्म-क्रेन्दित मूल्यों का आश्रय ग्रहण करना पड़ता है।

ऐसे प्रबन्धक जो अपनी सारी समस्याओं का समाधान मनुष्य के नैतिक एवं आध्यात्मिक पक्ष की अवहेलना कर शुद्ध भोगवादी दृष्टिकोण से करते हैं, उन्हें अन्तत: दु:साध्य समस्याओं का सामना करना पड़ता है। शीघ्र ही उन्हें उस तथ्य का अनुभव हो जाता है कि मात्र पार्थिव लक्ष्य एवं उपलब्धियाँ उन्हें बृहत्तर निगमित चुनौतियों का सामना करने में असमर्थ एवं अप्रभावी बनाती हैं।

तब सम्भ्रमित-से ये सफलताकांक्षी प्रबन्धक, किसी ऐसे व्यक्ति की खोज एवं सहायता प्राप्ति हेतु उत्कंठित हो उठते हैं जो उनके सहकर्मियों एवं अधीनस्थों को एक दल के रूप में निगमित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु प्रेरित कर सके। प्राय: ये प्रबन्धक अपने कर्मचारियों के मानवीय पक्ष के परिमार्जन, संवर्धन एवं सत्प्रेरणा हेतु उन कुशल परामर्शदाता प्रेरणास्पद व्यक्तियों को अच्छा खासा भुगतान करने को भी प्रस्तुत रहते हैं। ये परामर्शदाता भी इसी बात पर बल देते हैं कि किसी व्यापार-मंडल अथवा उद्यम का लक्ष्य केवल भौतिक समृद्धि नहीं हो सकती। प्रबन्धकों को चाहिए कि सफलता एवं प्रभावशाली होने हेतु वे अपने अधीनस्थों को अनौपचारिक सहायता मार्गदर्शन एवं सच्चे अर्थों में समाज-कल्याण के कार्यों में रुचि लें।

जब कर्मचारी एवं समाज इस बात से आश्वस्त हो जाते हैं कि कम्पनी समाज के प्रति उत्तरदायी है तथा मात्र स्वार्थप्रेरित भौतिक लाभ हेतु ही उनका दोहन नहीं किया जाएगा, तब वे उत्साहित होकर, सम्पूर्ण हृदय से कम्पनी की लक्ष्यपूर्ति में सहयोगी एवं प्रयत्नशील हो जाते हैं। अत: यह स्पष्ट ही है कि पार्थिव प्रेरणात्मक शक्तियों की तुलना में नैतिक एवं आध्यात्मिक शक्तियाँ अधिक प्रभावशाली एवं प्रेरक होती हैं।

## सच्चा दर्शन सहायक होता है

नि:सन्देह भविष्य में प्रबन्धकों को अपने उत्तरदायित्व के प्रभावी निर्वहन हेतु अधिक कुशल एवं प्रशिक्षित होना पड़ेगा। वे ऐसे वृहत निगम तन्त्रों के संचालक हैं जिसमें विविध क्षेत्रों में शिक्षा एवं प्रशिक्षिण प्राप्त व्यक्ति एक समूह के रूप में कार्य करते हैं। अत: इन प्रबन्धकों को निगम के लक्ष्य की प्राप्ति हेतु अपने अधीनस्थ अन्य कर्मचारियों के प्रशिक्षण एवं कौशल के प्रभावी उपयोग की आवश्यकता होगी। इतना ही नहीं अपितु, ये प्रबन्धक भविष्य में और भी वृहत व्यापारिक लक्ष्यों की योजना का नेतृत्व भी वहन करेंगे। इन निगम-लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु उन्हें कम्पनी में एक अच्छी कार्य-संस्कृति तथा कर्मचारियों के मध्य दलनिष्ठा एवं पारस्परिक सहयोग की भावना को विकसित करने के लिये स्वयं भी विशिष्ट कार्य-कौशल एवं प्रशिक्षण प्राप्त करना होगा।

यहाँ पर एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मौलिक प्रश्न प्रत्येक प्रबन्धक, कार्यपालक अथवा व्यवसायी के लिये यह है कि ''क्या आपके सहयोगियों अथवा अधीनस्थों को प्रेरित करने में मात्र धन अथवा अन्य पार्थिव लाभ पर्याप्त है?'' बड़े व्यावसायिक घरानों, उद्योगों एवं निगम तन्त्रों जिनमें राज्य एवं केन्द्र सरकारें शामिल हैं – का अनुभव इस बात की पुष्टि करता है कि केवल धन किसी व्यक्ति को सांस्थानिक उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु प्रेरित नहीं कर सकता। ❖ (क्रमशः) ❖

# वेदान्त-बोधक कथाएँ (९)

(रामकृष्ण संघ के एक वरिष्ठ संन्यासी स्वामी विश्वाश्रयानन्द जी ने वेदान्त के गूढ़-गहन तत्त्वों को अभिव्यक्त करनेवाली कुछ कथाओं को बँगला में लिखकर 'गल्पे वेदान्त' नामक पुस्तक के रूप में प्रकाशित कराया था। बाद में स्वामी अमरानन्द जी ने उसका आंग्ल रूपान्तरण किया। दोनों ही पुस्तकें काफी लोकप्रिय हुई हैं। उन्हीं कथाओं का हिन्दी अनुवाद हम धारावाहिक रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं। – सं.)

## याज्ञवल्क्य और मैत्रेयी

याज्ञवल्क्य प्राचीन भारत के एक प्रसिद्ध ऋषि और अपने काल के महानतम विद्वानों में एक थे। कहते हैं कि ईश्वर की कृपा से वेदों का कुछ अंश इनके द्वारा भी प्रकट हुआ था।

ऋषि याज्ञवल्क्य की दो पत्नियाँ थीं – कात्यायनी और मैत्रेयी। कात्यायनी एक सामान्य गृहिणी की भाँति थी और उसे याज्ञवल्क्य के धर्म तथा दर्शन के विशद ज्ञान में कोई रुचि न थी। परन्तु मैत्रेयी अपने प्रसिद्ध पतिदेव के बौद्धिक तथा दार्शनिक गतिविधियों में पूरे हृदय से रुचि लेती थी।

एक दिन याज्ञवल्क्य ने मैत्रेयी से कहा – "मेरी इस गृहस्थाश्रम का त्याग कर देने की इच्छा है, अत: मैं चाहता हूँ कि अपनी सम्पत्ति का तुम्हारे और कात्यायनी के बीच बँटवारा कर दूँ।"

इस पवित्र संकल्प की बात सुनकर मैत्रेयी के मन को जरा भी आघात नहीं पहुँचा। प्राचीन भारतीय समाज में उच्च वर्णों के सभी व्यक्तियों से अपेक्षा की जाती थी कि वे अपनी वृद्धावस्था में संन्यास जीवन का वरण करेंगे। परन्तु उसे खेद केवल इस बात का था कि याज्ञवल्क्य स्वयं तो उपासना का जीवन अंगीकार करनेवाले हैं, परन्तु उसे केवल जागतिक धन देने को इच्छुक हैं। मैत्रेयी ने पूछा – "क्या धन से मुझे अमृतत्व की प्राप्ति हो जायेगी?"

याज्ञवल्क्य और मैत्रेयी

ऋषि ने उत्तर दिया – "कदापि नहीं। इसके द्वारा तुम्हारा जीवन केवल अन्य धनाढ्य लोगों की भाँति ही जागतिक सुख-सुविधाओं से युक्त हो जायेगा। धन के द्वारा कदापि अमृतत्व प्राप्ति की आशा नहीं की जा सकती।

मैत्रेयी – "तो फिर मैं ऐसी चीज लेकर क्या करूँगी, जो मुझे अमर नहीं बना सकती? इससे अच्छा तो यह होगा कि आप अपने ज्ञान का ही थोड़ा-सा भाग मुझे प्रदान करें।"

यह सुनकर याज्ञवल्क्य आनन्द से अभिभूत हो उठे। वे बोले – "तुम सदैव से ही मेरी अतीव प्रिय रही हो और आज तुमने मुझसे अत्यन्त प्रिय बात कही है। मैं तुम्हें परम तत्त्व का ज्ञान दूँगा। सावधान होकर सुनो।"

इसके बाद याज्ञवल्क्य उसे आत्मा के सूक्ष्म तत्त्व का उपदेश देने लगे। वे बोले – "हम लोग अनेक व्यक्तियों तथा वस्तुओं से प्रेम करते हैं, पर वह प्रेम गौण है, क्योंकि वे सभी चीजें आत्मा के आनन्द में ही योगदान करती हैं। पत्नी पति के लिये उससे प्रेम नहीं करती, बल्कि उसकी आत्मा के कारण ही उससे प्रेम करती है। इसी प्रकार संसार के अन्य सभी तरह के बन्धनों तथा आसक्तियों के पीछे स्थित आत्मा के प्रति प्रेम ही मुख्य है। इसलिये वस्तुत: हमारी अपनी यथार्थ आत्मा ही एकमात्र जानने योग्य वस्तु है।"

"जिस प्रकार नमक की एक डली पानी में डाल देने पर वह उसी में घुलकर एकाकार हो जाती है, उसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति शुद्ध चेतना के सागर से एक पृथक् अस्तित्व के रूप में विकसित होता है। सागर के साथ एकात्मता की अनुभूति के उपरान्त उसमें फिर ऐसे विचार नहीं रह जाते, यथा – 'मैं अमुक हूँ और अमुक का पुत्र या पुत्री हूँ, आदि आदि।' "

मैत्रेयी बोली – "आपने तो मुझे संशय में डाल दिया। आप कहते हैं कि ब्रह्म शुद्ध चेतना है और फिर यह भी कहते हैं कि उसकी प्राप्ति के बाद व्यक्ति की चेतना चली जाती है।"

याज्ञवल्क्य ने कहा – "मेरे कथन में जरा भी विरोधाभास नहीं है। केवल अज्ञान के कारण ही हम लोग शरीर, मन, इन्द्रियों आदि के साथ एकात्मता का बोध करते हैं और इसके फलस्वरूप अपने व्यक्तिगत अस्तित्व की कल्पना करने लगते हैं। जब वह तादात्म्य चला जाता है, तब हमारा व्यक्तिगत अस्तित्व भी लुप्त हो जाता है। इस सूक्ष्म तत्त्व
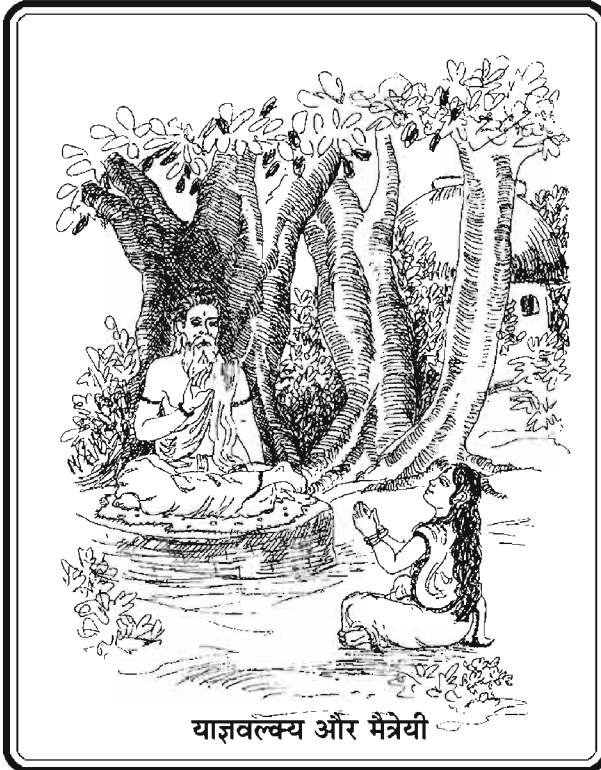
पर ध्यान करो, तो तुम्हें इसकी धारणा हो सकेगी।''

याज्ञवलक्य ने अपना वक्तव्य समाप्त किया। उस स्थान पर एक प्रकार की प्रशान्ति फैल गयी। मैत्रेयी ऋषि के शब्दों पर चिन्तन करने लगी। उसे बोध होने लगा कि सत्य उसके हृदय को आलोकित करता जा रहा है।

*अनासक्ति तथा हृदय की पवित्रता के द्वारा मैत्रेयी ने अपने सुप्रसिद्ध पति के समान ही जीवन की पूर्णता प्राप्त की।*

## याज्ञवल्क्य और गार्गी

जनक प्राचीन भारत के एक राजर्षि थे। वे मिथिला के राजा थे। उनके राज-दरबार में महान् विद्वानों का बाहुल्य था और महाराज जनक स्वयं भी सम्पूर्ण भारत में अपने ज्ञान के लिये सम्मानित तथा सुविख्यात थे।

एक बार जनक ने एक यज्ञ का अनुष्ठान किया और उसमें बड़ी उदारता के साथ दान का आयोजन किया। इस समारोह में भाग लेने हेतु कुरु-पांचाल आदि दूर-दूर के अंचलों से वैदिक विद्वान् मिथिला में आकर एकत्र हुए।

जनक ने मन-ही-मन सोचा – ''यह एक बड़ा ही दुर्लभ समावेश है। वैदिक ज्ञान में निष्णात इतने सारे विद्वान् यहाँ एकत्र हुए हैं। इस अवसर का लाभ उठाकर मुझे यह पता लगाना चाहिये कि इस भव्य सम्मेलन के बीच कौन सबसे महान् और विलक्षण विद्वान् है!''

जनक ने एक योजना बनायी। उन्होंने अपने सेवकों को आदेश देकर एक हजार चुनिंदा गायें एक स्थान पर बँधवा दीं। फिर उन्होंने प्रत्येक गाय के सींगों से पाँच-पाँच सोने के टुकड़े भी बँधवा दिये।

इसके बाद जनक यज्ञस्थल में उपस्थित हुए। उन्होंने गम्भीरतापूर्वक घोषणा की – ''आप लोगों में जो सबसे बड़े ज्ञानी हों, वे इन हजार गायों को हाँककर ले जायें।''

घोषणा थोड़ी विचित्र थी और पूरी सभा में सन्नाटा छा गया। कोई भी ऋषि उठकर यह घोषणा करने को तैयार न था कि वही सर्वश्रेष्ठ विद्वान् है। तब याज्ञवल्क्य उठकर खड़े हुए और अपने शिष्य सामश्रवा से कहा – इन गायों को हाँककर अपने आश्रम में ले जाओ।'' तत्काल सभा के बीच हलचल मच गयी। महाराज जनक के पुरोहित अश्वल ने ही सर्वप्रथम चुनौती देते हुए कहा – ''याज्ञवल्क्य, क्या तुम सचमुच ही हम लोगों के बीच सर्वश्रेष्ठ विद्वान् हो?''

याज्ञवल्क्य – ''सर्वश्रेष्ठ विद्वान् को मेरा प्रणाम है; मैं तो केवल गायों का ही इच्छुक हूँ।''

अश्वल को याज्ञवल्क्य का यह विनय-भाव थोड़ा कृत्रिम-सा प्रतीत हुआ, अत: उन्होंने नाराज होकर याज्ञवल्क्य की परीक्षा लेने का निश्चय किया। और जनक के प्रिय पुरोहित होने के कारण भी यह उन्हें अपना कर्तव्य प्रतीत हुआ। उन्होंने याज्ञवल्क्य के समक्ष अनेक प्रश्न उठाये, परन्तु याज्ञवल्क्य ने उन सभी का उत्तर दे दिया। उनसे हर प्रश्न का त्वरित उत्तर पाकर अश्वल का क्रोध शान्त हो गया।

और भी कई विद्वान् याज्ञवल्क्य के ज्ञान की परीक्षा लेने लगे। उनमें से कोई-कोई तो सचमुच ही ज्ञान के खोजी थे, परन्तु बाकी लोग तो केवल उन पर प्रश्नों के वाण ही चलाना चाहते थे। सबके अन्त में वाचक्नु ऋषि की कन्या गार्गी नामक एक महिला उठ खड़ी हुई। गार्गी पहले ही कई प्रश्न पूछ चुकी थी, परन्तु अब उसने कुछ और भी प्रश्न पूछने की अनुमति माँगी।

गार्गी बोली – ''मैं उनसे केवल दो ही प्रश्न पूछना चाहूँगी और यदि ये उनका उत्तर दे सके, तो फिर आप लोगों में से कोई भी कभी उन्हें पराजित नहीं कर सकेंगे।''

प्राचीन भारत में महिलाएँ भी दार्शनिक परिचर्चाओं में भाग लेती थीं और यहाँ गार्गी में कितना प्रचण्ड आत्मविश्वास दीख पड़ता है, जिसके चलते वह एक महान् ऋषि के समक्ष अपने प्रश्न रखती है। वह स्वाभिमान की प्रतिमूर्ति थी।

गार्गी ने पूछा – ''हे याज्ञवल्क्य, इस विश्व-ब्रह्माण्ड के वर्तमान, भूतकालीन तथा भविष्य में होनेवाले सभी पदार्थ किससे ओतप्रोत हैं?''

याज्ञवल्क्य – ''अव्यक्त आकाश से।''

गार्गी – ''मैं आपको प्रणाम करती हूँ, आपने मेरे प्रश्न का सन्तोषजनक उत्तर दिया है। अब मैं अपना दूसरा प्रश्न पूछती हूँ।''

याज्ञवल्क्य – ''पूछो, गार्गी, पूछो।''

गार्गी – ''अव्यक्त आकाश किससे ओतप्रोत है?''

इस प्रश्न ने याज्ञवल्क्य की वाणी को मानो ज्ञान की एक नई ऊँचाई पर पहुँचा दिया। उन्होंने उत्तर दिया – ''वह अक्षर ब्रह्म से ओतप्रोत है। वह ब्रह्म न तो स्थूल है, न सूक्ष्म, न छोटा है न बड़ा, न छाया है न अन्धकार और न वायु है न आकाश। विभिन्न लोक और सूर्य-चन्द्रमा तक इसकी प्रबल सत्ता की अवहेलना नहीं कर सकते। जो कोई भी इस ब्रह्म-तत्त्व को जाने बिना ही इस जगत् से प्रयाण करता है, उसे जन्म-मृत्यु के एक अविराम चक्र में घूमते रहना पड़ता है। यह ब्रह्म विचार या बुद्धि की परिधि में नहीं आता। ज्ञाता ब्रह्म ही सभी बुद्धियों के द्वारा बोध करता। सबके भीतर आत्मा के रूप में विराजने वाला और भूख-प्यास आदि समस्त सापेक्ष गुणों के परे स्थित ब्रह्म की अनुभूति ही परम सत्य और मानव-जीवन का परम लक्ष्य है। अव्यक्त आकाश इसी ब्रह्म के द्वारा ओतप्रोत है।''

यह उत्तर सुनकर गार्गी बोली – "माननीय ऋषिगण, कृपया सुनें। मैं पहले ही कह चुकी हूँ कि जो कोई मेरे प्रश्नों के उत्तर दे देगा, उसे आप लोगों में से कोई भी पराजित नहीं कर सकेगा। आप लोग उसे कभी हराने की आशा नहीं कर सकते। ब्रह्म के विषय में उनकी धारणा अतुलनीय है।"

इतना कहकर गार्गी बैठ गयी और विनयपूर्वक सभा की आगे की कार्यवाही सुनने लगी।

## इन्द्र की ब्रह्म से भेंट

एक बार काफी काल तक चले सुदीर्घ युद्ध में देवताओं ने असुरों को हरा दिया। इससे अहंकार में उन्मत्त होकर उन लोगों के मन में अपने विजय का समारोह मनाने की इच्छा हुई।

ब्रह्म ने ही देवताओं की ओर से विजय प्राप्त की थी, परन्तु देवतागण युद्ध में ब्रह्म की भूमिका से अनभिज्ञ थे और वे जीतने की खुशी में फूले नहीं समा रहे थे। ब्रह्म ने मन-ही-मन विचार किया – "देवताओं को इस भयंकर अहंकार से बचाना चाहिये, अन्यथा ये भी कुछ काल के भीतर ही आसुरी प्रवृत्ति के हो जायेंगे। इन्हीं की भलाई के लिये मुझे इनका अहंकार दूर करना चाहिये।"

इसके बाद, देवताओं के समारोह के पूर्व ही ब्रह्म उनके समक्ष एक ज्योतिर्मय मूर्ति के रूप में प्रकट हुए। देवताओं ने कभी ऐसी मूर्ति नहीं देखी थी। यह मूर्ति क्या है, कौन है – इस रहस्य को समझना उनके लिये असम्भव हो गया।

देवताओं ने अग्नि से कहा – "हम लोगों में आप ही बड़े शक्तिशाली माने जाते हैं। कृपया जाकर इस मामले की पूरी तौर से जाँच-पड़ताल कीजिये। लगता है कि यह कोई पूजनीय मूर्ति है।"

अग्निदेव ब्रह्म के पास या फिर कहें कि रहस्यमय रूपधारी मूर्ति के पास गये। ब्रह्म ने उससे पूछा – "आप कौन हैं?"

उन्होंने उत्तर दिया – "मैं अग्नि के रूप में परिचित हूँ।"

ब्रह्म – "आपका नाम तो बड़ा प्रसिद्ध है। आपमें कौन-से गुण हैं?"

अग्नि – "मैं इस दुनिया की प्रत्येक वस्तु को जलाकर खाक कर सकता हूँ।"

ब्रह्म ने उनके सामने एक तिनका रख दिया और उसे जलाने को कहा। अग्नि ने जी-जान से प्रयास किया, परन्तु उसे जलाने में असफल रहे। वे बड़े संकुचित होकर चुपचाप वापस लौट गये। उन्होंने जाकर देवताओं से कहा – "मैं नहीं बता सकता कि यह मूर्ति वस्तुतः कौन है।"

इसके बाद देवताओं ने वायु को उसी उद्देश्य से उस ज्योतिर्मय मूर्ति के पास भेजा। ब्रह्म ने पूछा – "आप कौन हैं? आप में क्या शक्तियाँ हैं?"

उत्तर मिला – "मुझे लोग वायु के नाम से जानते हैं। मैं दुनिया की हर चीज को उड़ा सकता हूँ।"

ब्रह्म ने उनके सामने एक तिनका रख दिया और उसे उड़ाने को कहा। वायु देवता आप्राण चेष्टा करके भी उसे उड़ाने में असमर्थ रहे। उन्होंने भी लौटकर देवताओं को बताया कि वे इस विचित्र प्राणी का परिचय नहीं पा सके।"

अब देवताओं ने अपने नेता इन्द्र से अनुरोध किया कि वे जाकर उस अपरिचित रहस्यमय मूर्ति से मिलकर जानकारी प्राप्त करें। इन्द्र के वहाँ पहुँचते ही वह मूर्ति अन्तर्धान हो गयी, पर अग्नि तथा वायु के समान इन्द्र वापस नहीं लौटे।

इन्द्र वहीं खड़े-खड़े मन-ही-मन इस अद्भुत घटना के बारे में विचार करते रहे। तब परम ब्रह्म ही हिमालय की सुन्दरी कन्या उमा के रूप में प्रकट हुए।

इन्द्र ने उमा से पूछा – "बताइये, वह मूर्ति कौन थी, जो हमारे समक्ष प्रकट होकर फिर अन्तर्धान हो गयी।"

उमा बोली – "वे ब्रह्म थे। असुरों को वस्तुतः ब्रह्म ने पराजित किया था। तुम लोग तो उसमें यंत्र मात्र थे, परन्तु तुम लोग अपनी विजय पर गर्वान्वित हो गये थे।"

इन्द्र का गर्व दूर हुआ। वे भलीभाँति समझ गये कि देवताओं के सभी कार्यों के पीछे ब्रह्म की शक्ति ही कार्यकर है। चूँकि केवल इन्द्र, अग्नि तथा वायु ने ब्रह्म के साथ बातें करने का साहस किया, अतः ये तीनों अन्य देवताओं से उत्कृष्ट हुए; परन्तु ज्ञान चूँकि इन्द्र को ही दिया गया, अतः वे सभी देवताओं में सर्वप्रमुख हुए।

*इस विश्व-ब्रह्माण्ड में एकमात्र ब्रह्म ही समस्त प्राणियों को प्रेरित तथा क्रियाशील करते हैं। परन्तु अहंकार के कारण ही हमें इस सत्य का बोध नहीं होता। श्रीरामकृष्ण कहा करते थे – "आदमी का अहंकार दूर हो जाने पर उसके सारे कष्ट समाप्त हो जाते हैं।"*

❖ (समाप्त) ❖

# मानव-वाटिका के सुरभित पुष्प

*डॉ. शरद् चन्द्र पेंढारकर*

### (३८) दाता के मन चिन्ता होई

एक बार सन्त इब्राहीम धर्मग्रन्थ का अध्ययन कर रहे थे, तभी एक व्यक्ति उनसे मिलने आया। उसे आदर से बिठाने के पश्चात् सन्त ने उनसे पूछा – "कहिये, मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ?"

उस व्यक्ति ने जवाब दिया – "जी, मैं आपकी सेवा लेने नहीं, देने आया हूँ।"

"मुझे क्या देना चाहते हो?" पूछने पर उसने कहा – "आपको यह थैली भेंट करना चाहता हूँ।"

"इसमें क्या है?" – सन्त के पूछने पर उसने बताया – "इसमें सोने की सौ अशर्फियाँ हैं।"

सन्त ने कहा – "मगर मैं गरीबों से दान नहीं लेता।"

वह बोला, "मैं गरीब नहीं, अमीर हूँ। इसी कारण तो सौ अशर्फियाँ देने की स्थिति में हूँ।"

सन्त इब्राहिम ने प्रश्न किया – "तू भले ही स्वयं को अमीर मानता होगा, पर मेरी नजर में तो तू गरीब ही है। क्या तेरी और अधिक अमीर बनने की लालसा नहीं है? सच-सच बता, क्या तू अपनी हालत से सन्तुष्ट है?"

उसने कहा– "प्राप्त धन से भला कोई सन्तुष्ट रह सकता है?"

सन्त ने दो टूक कहा – "जो अपने संचित धन से सन्तुष्ट नहीं है तथा और ज्यादा धन को एकत्र करने की चाह रखता है, वह दुनिया के लिये अमीर ही क्यों न हो, मेरी दृष्टि में गरीब ही है। अब तू एकान्त में जाकर विचार कर कि वास्तव में तू क्या है, अमीर या गरीब?"

उसने घर में जाकर खूब सोचा, तो यह बात उसके ध्यान में आ गई कि जैसे गरीब धन के लिए लालायित रहता है, वैसे ही यदि अमीर भी धन के लिए लालायित रहे, तो दोनों में फर्क क्या? दोनों गरीब ही तो हुए। धनसंचय की लालसा में धन पाने की चिन्तायें व्यक्ति को घेरने लगती हैं। इन चिन्ताओं से बचने के लिए वह दान की ओर प्रवृत्त होता है। लेकिन वह सर्वस्व का दान नहीं करता, बल्कि यह सोचकर दान करता है कि दान करने से उसे पुण्य होगा और इसके परिणाम-स्वरूप उसे ज्यादा धन की प्राप्ति होगी। इसीलिए उसे सन्त इब्राहीम का कथन सत्य प्रतीत होने लगा।

### (३९) ऊँच निवास नीच करतूती

संत मानकोजी बोधला महाराष्ट्र के 'धामण' नामक ग्राम के पाटिल थे। वे भगवान विट्ठल के परम भक्त थे। उनकी निष्ठा तथा अपार भक्ति देख भगवान उन्हें जब-तब दर्शन देते और दोनों में वार्तालाप भी होता रहता था।

एक बार विट्ठलदेव ने बातचीत के दौरान यह कहा कि जिन भक्तों के हृदय में आन्तरिक प्रेम होता है, वे उनके रूखे-सूखे भोजन से सन्तुष्ट रहते हैं, किन्तु दिखावटी तथा आडम्बर युक्त भोजों में जाना वे बिल्कुल पसन्द नहीं करते। यह बात बोधला को जँची नहीं। उन्होंने कहा – "जब दोनों ही प्रकार के भक्तों की उन्हें भोजन कराने की हार्दिक इच्छा रहती है, तब भक्तों में ऐसा भेदभाव क्यों? इस पर भगवान बोले – "इसकी प्रतीति तुम्हें कल तुम्हारे ही गाँव में हो जायेगी। कल तुम्हारे गाँव के एक सेठ के घर हजार ब्राह्मणों को भोजन का निमंत्रण है। वह भी मेरा भक्त है, पर वह कैसा भक्त है, इसका अनुभव तुम वहाँ पहुँच करके लेना।

दूसरे दिन बोधला उस सेठ की हवेली से कुछ दूरी पर खड़े हो गये। उन्होंने देखा कि सेठ के यहाँ लोग बड़ी संख्या में भोजन के लिए जा रहे हैं। मण्डप में पत्तलों पर नाना प्रकार के मिष्ठान्न परोसे जा रहे हैं। सेठजी द्वार पर खड़े होकर आमंत्रितों को सम्मानपूर्वक अन्दर ले जा रहे हैं।

इतने में एक बूढ़ा कुबड़ा ब्राह्मण जो अपने शरीर पर टाट का टुकड़ा लपेटे हुए था, अन्दर जाने लगा, तो सेठ के मुनीम ने उसे रोका और अन्दर जाने से मना किया। मगर वह न माना और मुनीम के हाथ को झटका देकर अन्दर जाकर एक पत्तल के सामने बैठ गया। सेठ उस बूढ़े की धृष्टता से नाराज हो गये और उन्होंने बूढ़े को उठाकर बाहर जाने को कहा। बूढ़ा गिड़गिड़ाया और बहुत दिनों से भूखा होने की रट लगाता रहा। मगर सेठ का दिल न पसीजा। उसके प्रति अपशब्द निकालकर उन्होंने उसे मण्डप से बाहर कर दिया।

मानकोजी चुपचाप यह दृश्य देख रहे थे। इतने में वह बूढ़ा उनके पास आकर बोला – "देखा, मेरे इस अमीर भक्त ने मेरे साथ कैसा बरताव किया। अब तो तुम समझ गये न कि ऐसे धनाढ्य लोगों के यहाँ भोज में जाना मैं क्यों पसन्द नहीं करता!

❑❑❑

# आत्माराम की आत्मकथा (२४)

*स्वामी जपानन्द*

(रामकृष्ण संघ के एक वरिष्ठ संन्यासी स्वामी जपानन्द जी (१८९८-१९७२) श्रीमाँ सारदादेवी के शिष्य थे। स्वामी ब्रह्मानन्द जी ने उन्हें संन्यास-दीक्षा प्रदान की थी। भक्तों के आन्तरिक अनुरोध पर उन्होंने बँगला भाषा में श्रीरामकृष्ण के कुछ शिष्यों तथा अपने अनुभवों के आधार पर कुछ प्रेरक तथा रोचक संस्मरण लिपिबद्ध किये थे। इसके अनुवाद की पाण्डुलिपि हमें श्रीरामकृष्ण कुटीर, बीकानेर के सौजन्य से प्राप्त हुई है। अनेक बहुमूल्य जानकारियों से युक्त होने के कारण हम इसका क्रमश: प्रकाशन कर रहे हैं। इसके पूर्व भी हम उनकी दो छोटी पुस्तकों – 'प्रभु परमेश्वर जब रक्षा करें' तथा 'मानवता की झाँकी' का धारावाहिक प्रकाशन कर चुके हैं – सं.)

## वाराणसी की ओर

समाचार आया – इस साल (१९२१) राजा महाराज (स्वामी ब्रह्मानन्दजी) काशी में ठाकुर की जन्मतिथि मनायेंगे और वहीं यथारीति संन्यास-ब्रह्मचर्य आदि की दीक्षा प्रदान करेंगे। सिद्धानन्दजी ने पत्र लिखकर उन्हें मेरे विषय में सूचना दे रखी थी। सहसा बुलावा आया – "पत्र पाते ही चले आओ।" राजा महाराज का आदेश ! लेकिन मैं अकिंचन था और उनके पास भी पैसे की कमी थी, इसलिए सोचा गया कि कनखल जाकर बड़े स्वामीजी को कहा जाये। आशा की गई कि वे यदि गाड़ी-भाड़ा न दे सके, तो उधार अवश्य ही दे देंगे। मैं कनखल आया, परन्तु उन्होंने सब सुनकर भी किराये के बारे में नहीं पूछा और मेरे मन में भी उधार माँगने की प्रवृत्ति नहीं हुई। यद्यपि उन्होंने गाड़ी के बारे में नहीं पूछा, लेकिन पूजनीय राजा महाराज के लिए १०-१२ सेर अच्छा बासमती चावल साथ ले जाने को अवश्य कहा।

समस्या में पड़ा ! जाऊँगा कैसे? निश्चय किया – पैदल ही चलकर जाऊँगा। जितनी तेजी से सम्भव हुआ, चलूँगा। आशा थी कि रास्ते में 'जगदम्बा' की कृपा से कोई-न-कोई गाड़ी-भाड़ा दे देगा। अगले दिन भोजन के बाद 'जगदम्बा' का स्मरण करके कन्धे पर चावल की पोटली लादकर रवाना हुआ। यद्यपि स्वामीजी लोगों को ज्ञात था कि उस समय कोई गाड़ी नहीं जाती, तो भी किसी ने न तो कुछ कहा और न यही पूछा कि इतनी जल्दी क्यों जा रहे हो? वस्त्र के नाम पर तब मेरे पास एक कौपीन मात्र था और कम्बल से मैंने अपना पूरा शरीर ढँक लिया था।

कुछ दिनों तक तो एक कम्बल ही मेरा एकमात्र सम्बल रहा था। वस्त्राभाव या अर्थाभाव के लिए कभी मन में चिन्ता नहीं होती थी और बड़े आनन्द से रहता। एक बार तो कौपीन भी फट जाने से 'नागाबाबा' होने की नौबत आ गई थी। उस समय ऋषीकेश के पुराने साधुप्रेमी ईश्वरगिरिजी भिक्षा माँगकर मेरे कौपीन के लिये कपड़े का एक टुकड़ा लाये और मुझे बलपूर्वक दिया था। अहा ! उनका प्रेम कितना नि:स्वार्थ था ! यह सोचकर कि मैं शारीरिक परिश्रम नहीं कर सकता, वे स्वयं फूस-लकड़ी आदि काट लाये और आदमी बुलाकर अपने ही हाथों से मेरे लिए कुटिया बना दी थी। और सोने के लिये शय्या, उसे भी एक बंगाली साधु देवगिरीजी ने बना दिया था। मैं इनका चिर कृतज्ञ हूँ। इनके प्रेम का प्रतिदान देने की क्षमता न मुझमें है, न थी।

मुझे नहीं लगता कि मेरा एकमात्र कम्बल देखकर भाई लोगों के मन में किसी प्रकार की दया का उद्रेक हुआ था या कोई प्रश्न उठा था। वृन्दावन के डॉक्टर महाराज ने जो रुपये दिये थे, वे तो कबके समाप्त हो गये थे, अत: पैदल जाने के सिवाय दूसरा कोई चारा न था। 'जय माँ' – कहकर सहारनपुर का रास्ता पकड़ने चल पड़ा। वहाँ से दिल्ली जाना था और फिर दिल्ली से वाराणसी।

एक परिव्राजक संन्यासी ने कहा था कि वही रास्ता सुविधाजनक रहेगा। वे कई बार उस सड़क से दिल्ली गये थे। जय माँ ! कैनाल ब्रिज के पास नाथजी* से भेंट हुई।

पूछा – "कन्धे पर पोटली लिए कहाँ जा रहे हैं?"

मैं – "वाराणसी की ओर जा रहा हूँ।"

नाथजी – "कहाँ, इस समय तो कोई रेलगाड़ी नहीं है?"

मैं – "रेल से मेरा कोई नाता नहीं, पैदल जा रहा हूँ।"

नाथजी – "ऐसे ही, या कोई विशेष कार्य है?"

मैं – "बुलावा आया है, जाना ही होगा।"

नाथजी – "अरे, पैदल चलकर कितने दिनों में पहुँचेंगे? गाड़ी से जाइये, ये लीजिये रुपये ! इससे वाराणसी तक का भाड़ा तो नहीं होगा, कुछ कम पड़ेगा, तो भी क्या ! लीजिए।

मैं – "नहीं।"

नाथजी – "छोड़ूँगा नहीं, लेना ही होगा।"

हार कर लेना पड़ा। यह 'जगदम्बा' की कृपा नहीं, तो क्या है? उन्होंने ही तो इन्हें प्रेरणा दी ! मैं उनके प्रति चिर ऋणी हूँ, इसके बदले कुछ देने का बहुत प्रयास किया, पर सफल नहीं हुआ। वे मुझसे कभी जरा-सा कुछ भी नहीं लेते !

इलाहाबाद तक का किराया हुआ बाकी चार आने बचे। अस्तु, वहाँ से वाराणसी ज्यादा दूर नहीं, उतना रास्ता तो मैं सहज ही चलकर पूरा कर लूँगा – यह सोचकर निश्चिन्त हुआ और जगदम्बा की दया की बात सोचकर आनन्द के आँसू

* निवृत्तिनाथ – नाथपन्थी शान्तिनाथ के गुरुभाई

बहाने लगा। ट्रेन आई, देखा – ऋषिकेश के एक परिचित साधु तथा एक बंगाली सज्जन मुझे बुला रहे हैं – "इधर आइये ! इधर !" गया। अच्छी जगह मिली। इसके बाद पता चला कि ये भी इलाहाबाद जा रहे हैं। वाह ! अच्छे साथी मिल गये। रास्ते में उन्हीं लोगों ने भोजन भी कराया।

### इलाहाबाद में

इलाहाबाद स्टेशन पर पहुँचकर सोच रहा था – "आश्रम जाऊँ या नहीं।" वे बोले – "चलिये, हमारे साथ ही चलिये, हम अपने एक विशेष परिचित सज्जन के घर जा रहे हैं। वहाँ आपको कोई असुविधा नहीं होगी, बल्कि वे आपको देखकर खुश ही होंगे। भोजन और विश्राम के बाद इच्छा हुई तो आश्रम जा सकते हैं, अभी तो चलिये।"

मैंने – "तथास्तु" – कहा।

उन्होंने कहना जारी रखा – "और हाँ, ये लोग वाराणसी जायेंगे, पर दो-चार दिन बाद। साथ के इन सज्जन का मकान वाराणसी में ही और सेवाश्रम के निकट ही है। इनका आश्रम के अनेक लोगों से परिचय है और इनकी एक सगी राजा महाराज की शिष्या हैं।"

इस प्रकार उनके साथ काफी घनिष्ठता हो गई थी। और इसके फलस्वरूप वाराणसी जाकर बाद में कुछ दिनों तक उनके उद्यान के एक पुराने कमरे में ठहरा था। वह सेवाश्रम के बिल्कुल पास ही कामाक्षा की ओर जानेवाली सड़क के कोने पर था। और जितने दिन राजा महाराज वहाँ विराजते थे, प्रतिदिन उनके दर्शन करने जाया करता था।

इलाहाबाद में उन सज्जन के घर भोजन के बाद थोड़ी देर विश्राम करके पूज्य विज्ञान महाराज के दर्शन करने मुट्ठीगंज के आश्रम में गया। जाकर देखा – आश्रम के ठीक सामने ही एक पागल बैठा है – कुछ लड़के उसे चिढ़ा रहे हैं। और पूज्य विज्ञान महाराज दरवाजे के काँच से विस्मित आँखों से उसे देख रहे हैं। वहाँ दूसरा कोई न था।

मैंने बाहर से प्रणाम करके कहा – "दरवाजा खोलिये।" उन्होंने पागल की ओर इशारा करके कहा – "अरे बाबा।" काफी अनुरोध करने के बावजूद उन्होंने दरवाजा नहीं खोला – केवल उस पागल की ओर ही इशारा करते रहे। अन्त में कहा – "जाकर देवता* से मिल ले।" शायद वे मेरे बड़े-बड़े केश, पंजाबियों के समान विशाल दाढ़ी और कम्बल-धारण देखकर थोड़े आशंकित हुए होंगे। सोचा होगा – "लगता तो यह भी वही – एक पागल ही है।"

देवता का दर्शन करने दवाखाने की ओर गया। उस समय वे विश्राम कर रहे थे। बहुत आवाज देने के बाद स्थूलकाय देवता ने दरवाजा खोला। उन्हें सब कुछ बताया और महाराज को प्रणाम सूचित करने को कहकर उन्हीं सज्जन के यहाँ चला आया।

अगले दिन सुबह पैदल ही रवाना होने के लिए तैयार होकर उन लोगों से विदा लेने गया। उन्होंने पूछा – "पैदल क्यों? क्या कोई व्रत लिया है?"

मैंने हँसते हुए कहा – "नहीं, ऐसी बात नहीं है, लेकिन रेल कम्पनी तो मेरे मामा की नहीं है कि बिना-टिकट गाड़ी में चढ़ने देगी, इसीलिये।" वे बोले – "यह क्या ! नहीं, ऐसा नहीं होगा – चलिए, हम टिकट कर देंगे।" यह कहकर उन लोगों ने मेरे साथ स्टेशन आकर टिकट खरीद दिया और गाड़ी में भी बैठा गये।

इस प्रकार जगदम्बा की कृपा और श्रीगुरुदेव के आशीर्वाद तथा अनुग्रह से, बिना किसी कष्ट के वाराणसी आया। उनकी दया से सब कुछ सम्भव है, उन्होंने ही सब कुछ जुटा दिया।

### वाराणसी में स्वामी ब्रह्मानन्द

वाराणसी – पास कौपीन तथा कम्बल मात्र है – दाढ़ी तथा केश बहुत दिनों से न कटवाने के कारण बड़े-बड़े हो गये थे, पाँव नंगे थे और मन उदास था। जाकर अद्वैत आश्रम में उपस्थित हुआ। सुबह के साढ़े छह या सात बजे होंगे, चाय का आयोजन चल रहा था। सोचा था – कोई पहचान नहीं सकेगा। लेकिन ठाकुर को प्रणाम करके उठते ही पकड़ा गया। अनेक लोगों ने मुझे पहचान लिया। पूज्य कल्याणानन्द जी द्वारा प्रदत्त बासमती चावल की उस पोटली को यत्नपूर्वक ले जाकर राजा महाराज के सम्मुख रखकर मैंने उन्हें श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया।

– "यह क्या रे? तू तो कमली बाबा हो गया है ! कुशल से है न? आने में इतनी देर क्यों हुई?"

मैं – "महाराज, एक तो पत्र मिलने में देरी हुई और दूसरे पास में पैसे न होने के कारण और भी विलम्ब हो गया।"

राजा महाराज – "कल्याण से क्यों नहीं माँग लिया? मैंने तुम्हें बुलाया है – यह बात कही थी?"

मैं –"जी ...।"

और कुछ कहे बिना मैं दृष्टि झुकाए मौन बैठा रहा। वे भी थोड़ी देर तक चुप रहने के बाद सहसा कहने लगे – "इस बार बहुतों का संन्यास हुआ, तू देरी करके आया !"

मैं – "महाराज, आपने बुलाया है और मैं आया हूँ।"

राजा महाराज – "ठीक है, हो जायेगा। जा, कुछ खा ले।" गहरी, उदास दृष्टि !

नीचे जाते ही कुछ ने कहा – "अरे, इतनी देर क्यों की? उन्होंने स्वयं ही तुम्हें बुलाया था – यथासमय आना चाहिए था। ऐसी मूर्खता की। इस बार शायद तुम रह गये !"

---

* एक ब्रह्मचारी, जिनका नाम पंचानन भी था।

कोई कहने लगे – ''कितनी चेष्टा तथा साधना करके भी जिनकी कृपा नहीं मिलती है, उन्होंने स्वयं तुम्हारी तलाश करके तुम्हें बुलाया और तुमने आने में इतनी देरी की।''

एक अन्य मित्र ने थोड़ा किनारे ले जाकर कहा – ''तुम्हें यह मौका मिलेगा और वे स्वयं तुम्हारा पता लगाकर तुम्हें बुलायेंगे – यह एक आश्चर्यनजक घटना है। मालूम है न – पूज्य म. महाराज ने तुम्हारे खिलाफ बड़ी खराब रीपोर्ट दी है! बिना बताये भाग गये थे और भी कुछ था। तब भी उन्होंने तुम्हें बुलवाया है। बड़े आश्चर्य की बात है। तुमने तो कोई पत्र आदि भी नहीं लिखा।''

मैं – ''नहीं भाई! प्रथमत: तो मुझे पता ही न था कि मेरे बारे में उनकी क्या धारणा है; द्वितीयत: जब पू. म. मेरे विरोध में हैं, तो पत्र आदि लिखना भी व्यर्थ था; और तृतीयत: मैं माँगना नहीं जानता। अब तक कुछ भी माँगा नहीं है। जो कुछ मिला है, सब अपने-आप ही किसी अन्य के कहने से या स्वेच्छा से दिया गया है। मेरी दीक्षा का ही उदाहरण लो। पू. खोखा महाराज (स्वामी सुबोधानन्द जी) और पू. कृष्णलाल महाराज ने स्वयं ही श्रीमाँ से कहा था और उसके बाद माँ ने स्वयं दिन निर्धारित करके कृष्णलाल महाराज के मार्फत दीक्षा के लिये आने को कहा था। फिर इधर आने के पूर्व श्रीमाँ ने स्वयं ब्रह्मचर्य और गेरुआ वस्त्र दिया था। गेरुआ न होने से उधर काम कैसे चलता? माँ की अपार दया है! उनकी शक्ति में ही शक्ति है! अभी तो देख रहे हो – पूरा संन्यासी। तो यदि वे दया करके औपचारिक संन्यास दे दें, तो कृतार्थ होऊँगा, वरना संन्यासी तो मैं हूँ ही। भाई, उसके लिए मुझे जरा-सी भी चिन्ता नहीं है।''

संन्यासी मित्र – ''देख रहा हूँ कि तुम स्वयं-पन्थी हो गये हो। तुमने खुद ही खोल बदल लिया है?''

मैं – ''और किसके पास जाऊँगा? श्रीमाँ के समक्ष तो सिर झुकाया ही है और श्री ठाकुर के सन्तानों के समक्ष भी नत-मस्तक हो सकता हूँ। इसके सिवाय अन्य किसी के चरणों में यह सिर नहीं झुकेगा, यह निश्चय जानो। मैं मठ और मिशन में रहूँ या न रहूँ, यह शरीर उन्हीं का है। और जो तुम मेरे विरुद्ध रिपोर्ट की बात कह रहे थे, इस समय देख रहा हूँ कि राजा महाराज ने उस पर जरा भी ध्यान नहीं दिया है। ... भाई, जो सत्य है, वह कभी-न-कभी प्रकट होगा ही। भले के विरुद्ध अनुचित अरोप लगाकर निर्दोष को दोषी बनाने की चेष्टा केवल स्वार्थ-सिद्धि के लिए ही होती है। वह अन्त तक नहीं टिकती, सत्य बाहर आता ही है।''

– ''जानते हो न, उसे आफिस से हटना पड़ा है?'' ...

मैं – ''नहीं भाई, मैं कोई खबर ही नहीं रखता। वह सब लेकर कौन सिर खपाये! जिसे भय है और मन में पाप है वही यह सब चिन्ता करते मरता है। मेरा तो भाव है – 'सबै भूमि गोपाल की' – स्वतंत्र, बेपरवाह, मस्त संन्यासी हूँ बाबा। जो दोषी हैं, जिनकी अन्य कोई गति नहीं, उन्हें चिन्ता करते हुए मरने दो। और मेरे विरुद्ध जो कुछ कहा गया है, यदि राजा महाराज उस पर विश्वास करते, तो अवश्य मुझे नहीं बुलाते। मेरे पलायन का सुयोग लेकर मेरे बारे में जो झूठा दोषारोपण किया गया है, उसे पूज्य लोग एक दिन अवश्य समझेंगे। अस्तु, पूजनीय राजा महाराज ने स्वयं ही मुझे बुलवा कर स्पष्ट कर दिया है कि वह अध्याय समाप्त हो चुका है। इस विषय पर अब और चर्चा करने की जरूरत नहीं है। ... मेरा दिल साफ है।''

चाय और जलपान करके पुन: राजा महाराज के कमरे में जाकर बैठा। अन्य संन्यासी तथा ब्रह्मचारीगण भी उपस्थित थे। वे बातचीत के माध्यम से धर्मोपदेश दे रहे थे, (उसका कुछ अंश पुस्तकों में प्रकाशित हुआ है)। बीच-बीच में वे मेरी ओर दृष्टिपात कर रहे थे। जब सभी लोग प्रणाम आदि करके उठकर जा रहे थे, तो मैं भी तैयार हुआ और जान-बूझकर सबके अन्त में जाकर प्रणाम किया। प्रणाम के बाद ज्योंही मस्तक उठाया, तो राजा महाराज ने तर्जनी के द्वारा दो बार वृत्त का आकार दिखाकर कहा – ''कहाँ जायेगा?'' और पुन: एक वृत्त बनाया। इशारे से ही बहुत-सी बातें हो गईं। वे थोड़ा हँसे, परन्तु उनके श्रीमुख पर लालिमा छा गयी और नेत्रों में स्नेह झलकने लगा। उन्होंने मेरे अन्तर तक को स्पर्श करके, मेरे पूरे देह-मन तक को आन्दोलित करके मुझे अपूर्व श्रद्धा-भक्ति से परिपूर्ण कर दिया। आँखों में आँसू आये, बड़ी मुश्किल से रोका, फिर चुपचाप पुन: प्रणाम करके नीचे उतरा।

कुछ दिनों बाद ही (१० फरवरी, १९२१ को) महाराज का जन्मदिन था – इस उपलक्ष्य में इस बार विशेष आयोजन हुआ है। पूज्य सुधीर महाराज (स्वामी शुद्धानन्दजी) ने मुझसे कहा – ''संन्यास के लिए तैयार हो?'' स्वामी अ... इस विषय में सहायता करेंगे। तुम्हारा, सेवाश्रम के चारुबाबू और एक अन्य – तीनों का उसी दिन गुरुवार को, विरजा-होम के साथ यथाविधि संन्यास होगा। वस्त्रादि की जरूरत होगी और मैं अकिंचन था, अत: स्वामी अ.., चारुबाबू, भक्तराज महाराज

– सबने मिलकर कुछ वस्त्र ला दिये और बाकी भण्डार से मिले। रात के अन्तिम प्रहर में स्वामी शुद्धानन्दजी ने आचार्य के रूप में वेद-मंत्रों के साथ विरजा-होम करवाया। महाराज ने स्वयं अपने हाथों वस्त्र देकर तथा मंत्र सुनाकर अन्तिम क्रिया सम्पन्न की। जिस समय मंत्रों का पाठ चल रहा था, उस समय मेरे भीतर एक अपूर्व शान्ति तथा आनन्द छा गया था। वस्तुत: मैं एक अन्य राज्य में उन्नीत हो गया था, परन्तु कुछ भी नया नहीं लग रहा था, लग रहा था मानो पहले कई बार ऐसा किया है। बड़ा आश्चर्य हो रहा था! तभी योगपट्ट अर्थात् नाम सुनाया – शुभानन्द, त्यागानन्द, अजपानन्द।

नाम मुझे पसन्द आया। परन्तु गंगा-स्नान और विश्वनाथ-अन्नपूर्णा के दर्शन आदि करके लौटने के बाद जब उन्हें पुन: प्रणाम करके नीचे उतर आया, तो वे कमरे से बाहर आकर, बरामदे में खड़े होकर मुझे पुकारकर बोले – "अरे, मेरी इच्छा है कि तेरा नाम हो – जपानन्द।" और पूजनीय सुधीर महाराज से वही लिख लेने को कहा। इस प्रकार अ-जपानन्द, जपानन्द में परिणत हुआ। सब उनकी लीला है।

संन्यासी को एक नाम देना पड़ता है, इसीलिये दिया जाता है – यह केवल परिचय के लिए है। इसके साथ सदा के लिये कोई विशेष महत्त्व जुड़ा रहता हो, ऐसी बात नहीं। कई बार नाम के रूप में निरर्थक शब्द मात्र ही दे दिया जाता है – यथा तोतापुरी, चमेलीपुरी, झण्डागिरी आदि आदि।

### भिक्षाटन के अनुभव

उस दिन एक भक्त (सम्भवत: बिपिन जमाई) के घर भिक्षा – माधुकरी भिक्षा की व्यवस्था हुई थी। शाम को पूज्यपाद राजा महाराज ने कहा – "भिक्षा का अन्न पवित्र होता है! कुछ दिन माधुकरी करना अच्छा है।" विशेषकर मेरी तरफ देखते हुए उन्होंने यह बात कही। स्वामी शुभानन्द से कहा – "बाहर जाने की आवश्यकता नहीं। अद्वैत आश्रम से ही झोली में भिक्षा लेकर तीन दिन खाना।"

मेरा अभिमान चूर्ण होने को था। अमृतसर की उस घटना के बाद से निश्चय किया था कि अब माधुकरी नहीं करूँगा। अब क्या करूँ! संन्यास-आश्रम के पूज्यपाद गुरुदेव का आदेश पालन करने के सिवा और कोई चारा ही कहाँ था! उस दिन विश्वनाथ-गली में भिक्षा करने गया। बहुत घूमने के बाद छह रोटियाँ और थोड़ी मिठाई मिली। एक अनुभवी साधु ने कहा – असमय जाने के कारण ही वैसा हुआ है। अगले दिन पुन: गया, थोड़ा जल्दी – अल्प समय में ही आहार के उपयुक्त अन्न मिला। काशी में उस मुहल्ले में – 'नारायण हरि' – सभी समझते हैं और श्रद्धापूर्वक भिक्षा भी देते हैं। इसके बाद से राजा महाराज के आदेश पर आश्रम में ही भोजन आदि करने लगा।

**❖ (क्रमश:) ❖**

## दुनिया उतारे आरती

*रामलषण शुक्ल, प्रयाग*

**दुनिया उतारे आरती<br>स्वामी विवेकानन्द की!**

**निज धर्म-संस्कृति का पराभव<br>देख दुख पाते रहे,<br>गुणगान भारत भूमि का<br>जो सर्वदा गाते रहे;<br>जय हो अमर उस सन्त की<br>स्वामी विवेकानन्द की ।।१।।**

**वेदान्त, दर्शन, उपनिषद् का<br>मर्म समझाते रहे,<br>पूजा, भजन, अर्चन, यजन का<br>पन्थ अपनाते रहे;<br>आजन्म फहराते रहे<br>कीरति-पताका हिन्द की ।।२।।**

**इंगलैंड, रूस, अमेरिका<br>सब विश्व देख चकित हुआ,<br>हे धन्य! मानव पर तुम्हारा<br>मन कभी न भ्रमित हुआ;<br>प्रमुदित सभी होते तुम्हारी<br>निरखि छबि मुखचन्द की ।।३।।**

**पर्वत, नदी, झरने, विपिन<br>कण-कण से तुमको प्यार था,<br>तुम प्राण हिन्दू धर्म के<br>तृण-तृण से स्नेह अपार था;<br>सीमा न रहती, धूलि में<br>जब लोटते आनन्द की ।।४।।**

**कीरति तुम्हारी है अमल<br>गंगा की निर्मल धार-सी,<br>सदसद् विवेकिनी बुद्धि भी<br>नैया की है पतवार-सी;<br>शत-शत नमन स्वीकार लो<br>स्वामी, ये माला छन्द की ।।५।।**

# हिन्दू धर्म की रूपरेखा (२१)

*स्वामी निर्वेदानन्द*

(प्राचीन काल में वैदिक या सनातन धर्म और वर्तमान में हिन्दू धर्म के रूप में प्रचलित धर्म का वास्तविक स्वरूप क्या है और विश्व के अन्य धर्मों से इसमें क्या समानता व भेद है, इसे समझ पाना हिन्दुओं के लिए भी अति आवश्यक है। विद्वान् लेखक ने अपने बँगला तथा अंग्रेजी ग्रन्थ में इस धर्म के मूल तत्त्वों का बड़ा ही सहज निरूपण किया है। उसका हिन्दी अनुवाद क्रमश: प्रस्तुत किया जा रहा है। – सं.)

## कर्मकाण्ड और पुराण-कथाएँ

हिन्दू-धर्म जिन आध्यात्मिक तत्त्वों की नींव पर खड़ा है, उनका संक्षिप्त परिचय हमें पिछले अध्यायों में मिला। ये तत्त्व धर्म के आन्तरिक अंग हैं और बाकी सब कुछ बाह्य अंग है। इन आन्तरिक तत्त्वों को सहज ही हृदयंगम करा पाने में ही बाह्य अंगों की सार्थकता है। शास्त्रीय कर्मकाण्ड तथा पौराणिक कथाएँ हिन्दू-धर्म के ऐसे ही दो बाह्य अंग हैं।

हम जानते हैं कि आध्यात्मिक तत्त्व अत्यन्त दुर्बोध्य हैं। खूब तीक्ष्ण बुद्धि होने के बावजूद इनका तात्पर्य समझना कठिन है। फिर, इन तत्त्वों की केवल बुद्धिगत धारणा को लेकर आध्यात्मिक जगत् में बहुत आगे तक नहीं बढ़ा जा सकता। शास्त्रों की वाणी उद्धृत करना या धर्म-विषयक व्याख्यान देना धर्म-जीवन का उद्देश्य नहीं है। धर्म-जीवन का लक्ष्य है – आत्मिक उन्नति। इसके लिये साधक को उपरोक्त तत्त्वों का मर्म समझकर तदनुसार अपने समग्र जीवन को संचालित करना होगा। जब तक इन तत्त्वों की प्रत्यक्ष अनुभूति नहीं हो जाती, तब तक धर्म-जीवन के ये ही साधन हैं। अपरोक्ष अनुभूति ही चरम लक्ष्य है। पवित्र चित्तवाले व्यक्ति के लिये ही इस लक्ष्य तक पहुँचना सम्भव है। इसीलिये धर्म-जीवन का उद्देश्य पूर्ण करने के लिये मन की गन्दगी को पूर्ण रूप से स्वच्छ कर डालना होगा।

चित्त के खूब निर्मल हो जाने पर स्वज्ञा[१] नामक एक प्रखर बुद्धि-वृत्ति का विकास होता है। इस वृत्ति के द्वारा ही आध्यात्मिक सत्य की प्राप्ति होती है। शुद्ध स्वज्ञा में ही ईश्वर, प्रकृति तथा जीवात्मा विषयक मूल सत्य स्वत:स्फूर्त होते हैं। जिन अनुभूतियों को इन्द्रियातीत या अति-प्राकृत कहते हैं, वे सभी इसी वृत्ति के माध्यम से प्रकट होती हैं। यह वृत्ति सबके भीतर होती है, पर अपवित्र मन की स्वज्ञा भी पंकिल होती है। इसीलिये चित्त निर्मल हुए बिना इसका प्रभाव समझा नहीं जा सकता। चित्त-शुद्धि के फलस्वरूप जब यह वृत्ति स्वच्छ हो उठती है, तब इसी के द्वारा ज्ञान-प्राप्ति का प्रमुख द्वार खुल जाता है। तब इसी के माध्यम से इन्द्रियों तथा बुद्धि के अगोचर अमूर्त तत्त्व हमारी चेतना में प्रकट होते हैं।

स्वज्ञा का इस प्रकार विकास होने पर मनुष्य को पूर्ण विकसित कहा जा सकता है। तभी उसे स्वभावी[२] मनुष्य और उसकी दृष्टि को स्वभावी दृष्टि कहा जा सकता है। पवित्र हृदय की स्वज्ञा की सहायता से सूक्ष्म तथा गहन तत्त्वों की जो अनुभूति होती है, वह वास्तविक पूर्ण मानव का सहज-स्वाभाविक बोध है। जिनमें यह वृत्ति सक्रिय नहीं होती, बल्कि उन्हीं को 'अविकसित स्वभाव के मनुष्य' कहा जा सकता है। जैसे मनीषियों की तुलना में बर्बर लोग अविकसित-स्वभाव के मनुष्य हैं, वैसे ही शुद्ध स्वज्ञा-सम्पन्न व्यक्ति की तुलना में मनीषी भी अविकसित-स्वभाव निम्न स्तर के मनुष्य मात्र हैं।

अस्तु। गम्भीर पारमार्थिक सत्य की उपलब्धि में सहायक इस वृत्ति का विकास तभी होता है, जब मनुष्य का मन पूर्ण रूप से पवित्र हो जाता है। इस कारण मन को निर्मल करना ही आनुष्ठानिक धर्म का प्रमुख उद्देश्य है। क्योंकि चित्त शुद्ध हो जाने पर तत्त्व-दर्शन स्वत: ही उपस्थित होता है। इस चित्तशुद्धि के सहायक के रूप में ही शास्त्रीय कर्मकाण्ड तथा पौराणिक कथाओं की सार्थकता है।

### कर्मकाण्ड

चित्त की शुद्धि करना ही समस्त हिन्दू कर्मकाण्डों का एकमात्र उद्देश्य है। इनका कोई अन्य तात्पर्य नहीं लगता।

वैसे मारण, उच्चाटन आदि जादू-टोने-जैसे कुछ निकृष्ट अनुष्ठान अथर्ववेद के काल से ही प्रचलित होकर बाद में तंत्रों के माध्यम से समाज में प्रचलित हुए। इस तरह के अनुष्ठानों का सामान्य नाम है अभिचार। अभिचार का विधान शत्रु-दमन, सांसारिक इच्छाओं की पूर्ति, रोगनाश, दुर्भाग्य-खण्डन आदि के लिये है। यदि प्रवृत्ति-मार्ग के साधक किसी शास्त्र-सम्मत उद्देश्य की सिद्धि के लिये इस प्रकार के क्रियाकाण्ड का अनुष्ठान करें, तो उसमें कोई हानि नहीं है। समाज के कल्याण हेतु समाज-द्वेषी व्यक्ति-विशेष का दमन करने के लिये इसकी आवश्यकता पड़ सकती है; साधक की इच्छा समाज के लिये अहितकर नहीं भी हो सकती है। ऐसी परिस्थितियों में अभिचार के अनुष्ठान से भी आध्यात्मिक क्षति की सम्भावना नहीं है। परन्तु दुर्बल तथा दुष्ट मन के लोगों द्वारा इस तरह के अनुष्ठानों का दुरुपयोग होना अत्यन्त स्वाभाविक है। किसी बुरे स्वार्थ की सिद्धि या किसी अन्य जघन्य उद्देश्य से भी लोग अभिचार के अनुष्ठान में लग सकते हैं। इसका अपरिहार्य परिणाम है आध्यात्मिक अधोगति।

१. Intution २. Normal

अभिचार की श्रेणी में आनेवाले क्रियाकाण्डों के अतिरिक्त बाकी सब शास्त्र-विहित कर्मकाण्ड आध्यात्मिक उन्नति में सहायक हैं। उनकी सहायता से मन को पवित्र किया जा सकता है। और हम लोग जानते हैं कि मन को पवित्र करना ही ईश्वर-दर्शन का सुनिश्चित साधन है।

थोड़ा विचार करें कि कर्मकाण्डों की सहायता से चित्त कैसे शुद्ध होता है। पहले के एक अध्याय में हमने देखा है कि अपनी स्वरूपगत दिव्यता के विषय में हमारा अज्ञान ही मन की सारी अशुद्धता का मूल कारण है। इस कारण जिस प्रक्रिया के प्रभाव से इस अज्ञान में कमी आ सकती है, वही चित्तशुद्धि का अनुकूल साधन है। ईश्वर तथा अपने दिव्यत्व का चिन्तन अज्ञान को दूर करते हैं, अत: ये चित्तशुद्धि के प्रभावी साधन हैं। परन्तु अमूर्त विषय पर चिन्तन करना बड़ा ही कठिन कार्य है। बहुत-से लोगों के लिये यह दुष्कर है। परन्तु यदि इसे किसी मूर्त विषय के सहारे क्रिया-कलाप के माध्यम से धीरे-धीरे अमूर्त लक्ष्य की ओर आगे बढ़ाया जाय, तो इस तरह का चिन्तन सबके लिये सहज हो सकता है।

प्रतीक या मूर्ति की सहायता से उपासना में इसी का एक उत्कृष्ट उदाहरण मिलता है। कोई व्यक्ति जब तक प्रतीक या प्रतिमा में ईश्वर की अर्चना करता है, तब तक वह अन्य किसी का नहीं, केवल ईश्वर का ही चिन्तन करता है। अपने चिन्तन-धारा को ईश्वरोन्मुखी करना ही चित्तशुद्धि का सर्वश्रेष्ठ साधन है। यदि किसी मूर्ति के सहारे ईश्वर-चिन्तन किया जाय, तो यह साधन बड़ा ही सहज-साध्य हो जाता है। मन को अधिक समय तक असीम, निराकार ईश्वर के चिन्तन में लगाये रखना मनीषियों तक के लिये आसान नहीं है।

पिछले एक अन्य अध्याय में[३] प्राण-प्रतिष्ठा नामक एक प्रक्रिया का उल्लेख किया गया है। इस प्रक्रिया पर विचार करके आसानी से समझा जा सकता है कि किस प्रकार शास्त्रीय क्रियाकाण्ड हमारी स्वभावगत दिव्यता के प्रति हमें सचेत करने में सहायता करते हैं। इस प्रक्रिया में पूजक को कल्पना करनी पड़ती है कि ईश्वर मानो उसके हृदय में स्थित आत्मा से एक ज्योतिर्मय रूप में मूर्त होकर पूजक के श्वास के साथ बाहर निकलते हैं और एक पुष्प के माध्यम से गृहीत होकर प्रतिमा में अधिष्ठित होते हैं। इसी से प्रतिमा में प्राण-प्रतिष्ठा हो जाती है। विद्वान् लोग इस प्रक्रिया को बच्चों का खेल मान सकते हैं, परन्तु कई मनीषियों के आध्यात्मिक जीवन का बचपन अभी बीता नहीं है, इसीलिये उनके लिये भी इस तरह का अनुष्ठान किण्डर-गार्टन-पद्धति के समान बड़ा ही उपयोगी तथा फलदायी है। इस प्रक्रिया का बारम्बार अनुष्ठान करने के फलस्वरूप क्रमश: आत्मा की दिव्यता के विषय में चेतना जाग्रत होती है।

३. 'विवेक-ज्योति के मई २००५ अंक में प्रकाशित १२ वाँ अध्याय

शास्त्रीय क्रियाकाण्ड के माध्यम से भगवान इस विश्व से जुड़े हुए हैं – इस तथ्य का चिन्तन करना चित्तशुद्धि का एक अमोघ उपाय है। और इस चिन्तन के फलस्वरूप साधक का मन क्षण भर के लिये मलिन वैषयिक परिवेश के ऊपर उठ जाता है। भगवान की उपासना तथा अर्चना करने के पूर्व पूजक को अपने देह-मन से लेकर विश्व की प्रत्येक वस्तु की दिव्यता का चिन्तन करना पड़ता है।[४]

हिन्दू धर्म का एक प्रधान आध्यात्मिक तत्त्व यह है कि भगवान स्वयं ही विश्व-प्रकृति के रूप में अभिव्यक्त होते हैं। मन के पूर्णत: पवित्र हो जाने पर इस तत्त्व की अनुभूति होती है। ऐसे पूतचित्त के महापुरुष सभी स्थानों तथा सभी वस्तुओं में वास्तविक रूप से भगवान के अस्तित्व का बोध करते हैं। पर ऐसी अपरोक्ष अनुभूति प्राप्ति के पूर्व इस तत्त्व की धारणा करनी पड़ती है और उसके लिये इस विषय पर गहन तथा एकाग्र भाव से चिन्तन करना आवश्यक है। साधक जितना ही इस विषय का चिन्तन करता है, उतना ही उसका अज्ञान तथा उससे उत्पन्न चित्त की अशुद्धि का क्षय होता रहता है। इस चिन्तन को सहज तथा सरस रूप से गहन बनाने में शास्त्रीय क्रियाकाण्डों से काफी सुविधा हो जाती है।

जैसे बच्चों के अपरिपक्व मन में गोली आदि स्थूल वस्तुओं की सहायता से संख्या, जोड़ना, घटाना आदि गणित के अमूर्त तत्त्वों का कुछ आभास कराना सम्भव है, ठीक वैसे ही अपरिपक्व मन के साधकों को स्थूल वस्तुओं की सहायता से ईश्वर की सर्वव्यापकता आदि अमूर्त तत्त्वों का किंचित् आभास कराना सम्भव है।

इसी प्रकार आभास कराने के लिये ही हिन्दू शास्त्रों में एक-एक स्थूल प्राकृतिक वस्तु की दिव्यता का चिन्तन करने का निर्देश दिया गया है। यथा – हिमालय या विन्ध्य नामक पूरी पर्वतमाला को ही पवित्र मानना होगा। समुद्र तथा गंगा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा, सिन्धु, कावेरी आदि नद-नदियों को इसी दृष्टि से देखना होगा। प्रत्येक नद, नदी तथा पर्वत को आधार बनाकर उसके अधिष्ठातृ-देवता निवास करते हैं। हिन्दुओं के पूज्यरूप ये सभी देवता ईश्वर की ही उच्चतर अभिव्यक्ति हैं।

यहाँ तक कि वाराणसी, प्रयाग, हरिद्वार, वृन्दावन, अयोध्या, द्वारका, श्रीक्षेत्र, उज्जयिनी, कांची, रामेश्वर, कन्याकुमारी आदि नगर या क्षेत्र भी हिन्दुओं की दृष्टि में पवित्र तीर्थभूमि हैं। इन स्थानों का परिवेश पारमार्थिक अनुभूति के अनुकूल है। सर्व-व्यापी ईश्वर मानो इन स्थानों में खूब झीने परदे के पीछे रहते हैं, थोड़ा-सा प्रयास करने से ही मानो उनका दर्शन प्राप्त हो सकता है। मानो उनका स्पर्श पाकर प्रत्येक तीर्थयात्री की

४. देवो भूत्वा देवं यजेत्।

आध्यात्मिक चेतना उद्दीप्त हो जाती है। इसी कारण इन तीर्थों के धूलकण तक पवित्र माने जाते हैं।

दुर्गापूजा की विधि के अनुसार अनेक जलाशयों से एकत्र तथा अनेक वस्तुओं से मिश्रित जल के द्वारा देवी को स्नान कराया जाया है। जिन नद, नदी, सरोवर, समुद्र आदि से यह जल संग्रह किया जाता है और जिन वस्तुओं को इसमें मिलाया जाता है, उन सभी की पवित्रता का चिन्तन किया जाता है। इस प्रकार पूजक की दृष्टि में मानो जगत् की प्रत्येक वस्तु की पवित्रता अभिव्यक्त हो उठती है। इस प्रकार के विधान का यही तात्पर्य है। किसी-किसी अनुष्ठान की विधि में सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र को उनके अधिष्ठातृ-देवताओं के शरीर के रूप में कल्पना करनी पड़ती है। वस्तुत: हिन्दू कर्मकाण्ड की सहायता से प्रकृति की प्रत्येक वस्तु पवित्रता से परिपूर्ण हो जाती है। इस विश्वव्यापी पवित्रता का चिन्तन करने से साधक का मन समस्त बुरी प्रवृत्तियों से मुक्त होकर निर्मल हो जाता है और भगवान के सर्वव्यापित्व की अनुभूति की क्षमता हासिल कर लेता है।

इस प्रसंग में शिवलिंग में शिव-रूपी भगवान की अर्चना के विषय में चर्चा अनुचित न होगी। आधुनिक लोगों में से कोई-कोई ऐसी अर्चना को प्राचीन बर्बर लोगों की लिंगपूजा का अवशेष मानकर कटाक्ष करते हैं। परन्तु लिंग शब्द का मुख्य अर्थ है प्रतीक, अत: शिवलिंग शब्द का तात्पर्य है – भगवान का एक पवित्र प्रतीक। इस प्रतीक के माध्यम से साधक केवल भगवान की ही अर्चना और उन्हीं का ध्यान करते हैं। भगवान के इस प्रकार के चिन्तन से मन निश्चय ही शुद्ध होता है। ईश्वर की सर्वव्यापकता के विषय में सुदृढ़ धारणा के बल पर ही निर्भीक हिन्दू की कल्पना कितनी दूरप्रसारी हो सकती है, इसका परिचय शिवलिंग-पूजा के प्रचलन में प्राप्त होता है।[५]

ईश्वर, उनका सर्वव्यापित्व तथा आत्मा की दिव्यता के ध्यान के सिवा, साधक के अपने देह-मन तथा परिवेश की पवित्रता का चिन्तन, हिन्दुओं के शास्त्रीय क्रियाकर्म की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि का निर्माण करता है। इस पवित्रता के स्मरण से थोड़ी देर के लिये अन्तर के मलिन विचार तथा आवेग शान्त हो जाते हैं और साधक का मन अन्तर्मुख होकर आराधना के भाव में तन्मय हो जाता है। ईश्वर की अर्चना के पूर्व इस प्रकार का भाव जाग्रत करने की विशेष आवश्यकता है। चित्त को निर्मल करके इस प्रकार का भावावेश उत्पन्न करने में ही पूजा के आरम्भिक अनुष्ठानों की सार्थकता है।

सामान्य तांत्रिक पूजा से सम्बन्धित कुछ अनुष्ठानों का उदाहरण देकर इस विषय को समझाने का प्रयास किया जा सकता है। इस प्रकार की पूजा में व्रती व्यक्ति को पूजा-मण्डप में प्रवेश करने के पूर्व पवित्र जल से शरीर को शुद्ध करते हुए स्नान करना पड़ता है और पूजा के लिये निर्दिष्ट वस्त्र आदि पहनने पड़ते हैं। पूजा-स्थान में भी पवित्र परिवेश होना चाहिये; मन्दिर या घर का देवालय भगवान की अर्चना के लिये उपयुक्त स्थान है। पूजा का स्थान जहाँ भी हो, वह स्थान तथा उसके उपकरणों को भलीभाँति स्वच्छ किया जाता है। पूजा-मण्डप की ओर जाते समय स्तोत्र, जप आदि की सहायता से पूजक के मन को ईश्वरोन्मुखी किया जाता है।

पूजा-मण्डप में प्रवेश करते समय पूजक को चित्तशुद्धि के लिये प्रार्थना करनी पड़ती है। इसके बाद उसकी पूजा देखने के लिये देवताओं का आह्वान करके उनका आचमन करने की प्रक्रिया की सहायता से अन्तर को शुद्ध किया जाता है। आचमन का मंत्र भी भावोद्दीपक है; उसका अर्थ है – 'तत्त्वदर्शी ऋषिगण सर्वदा विष्णु के उस परम पद का दर्शन करते रहते हैं।' वह परम पद ही परब्रह्म है। हिन्दू शास्त्रों में कथित विश्व के परम सत्तारूपी परब्रह्म में आस्था उत्पन्न करना ही इस मंत्र का उद्देश्य है; और इस महान् तत्त्व का स्मरण चित्तशुद्धि का एक उत्कृष्ट उपाय भी माना जाता है।

इसके बाद गंगा आदि सात नदियों की अधिष्ठातृ-देवियों का आवाहन करके जलशुद्धि किया जाता है। इस पवित्र जल का ही पूजा के अन्य सभी उपकरणों के शोधन के लिये उपयोग किया जाता है। उपयुक्त मंत्रों का पाठ करते हुए इस पवित्र जल को छिड़कते हुए पूजक का आसन, पुष्प-पात्र, धूपदानी, दीपक, नैवेद्य आदि समस्त उपकरणों की शुद्धि की जाती है। जिस स्थान पर पूजक का आसन स्थापित होता है, उसे शुद्ध करने का मंत्र है – "हे पृथ्वि (पृथ्वी की अधिष्ठातृ-देवता), आप मनुष्यों को धारण किये हुए हैं, विष्णु आपको धारण किये हुए हैं; आप सर्वदा मुझे धारण किये रहिये और मेरे आसन को पवित्र करिये।" इस प्रकार हम देखते हैं कि किस प्रकार कुछ साधारण प्रक्रियाओं के द्वारा सर्वव्यापी ईश्वर की ओर दृष्टि प्रसारित की जाती है और इसके फलस्वरूप मन उच्च आध्यात्मिक भूमि में आरोहण करता है।

इसके बाद भूतशुद्धि नामक प्रक्रिया का ध्यान बड़ा ही अद्भुत है। इस ध्यान के निर्देशानुसार पूजक का मन मूर्त विषय की सहायता से धीरे-धीरे वस्तु-विश्व का लोप, जीवात्मा का परब्रह्म में लय और दिव्य रूप में उसका पुन: प्राकट्य आदि कठिन कल्पनाओं में एकाग्र होने में सक्षम होता है। भूतशुद्धि के क्रम के अनुसार पूजक को ऐसी कल्पना करनी पड़ती है कि उसका सूक्ष्म शरीर तथा पाप-पुरुष, अर्थात् मूर्तिमान दुष्प्रवृत्तियाँ मानो सूख गयी हैं और फिर जलकर राख हो गयी हैं। इसके बाद ललाट में स्थित चन्द्रमा से क्षरित होनेवाले अमृत के स्पर्श से मानो सूक्ष्म शरीर संजीवित

५. शिवलिंग-पूजा की व्याख्या के लिये देखिये – विवेकानन्द साहित्य, सं. १९६३, खण्ड १०, पृ. १६२-६३

होकर अपूर्व ज्योतिर्मय मूर्ति के रूप में प्रकट हुआ है। इस प्रकार रूपक-आधारित चिन्तन के फलस्वरूप पूजक में ऐसा विश्वास उत्पन्न होता है कि उसका मन पवित्रता से परिपूर्ण हो गया है। स्थूल शरीर का भी प्रत्येक अंश शोधन करने के लिये न्यास नामक प्रक्रिया का विधान किया गया है।

ये विचार रूपक-बहुल कवि का कल्पना-विलास प्रतीत हो सकते हैं, परन्तु इनका फल प्रत्यक्ष-सिद्ध है। हम लोग गम्भीरतापूर्वक जो भी चिन्तन करते हैं, वही हो जाते हैं। यदि हम स्वयं को दुर्बल तथा दुराचारी सोचते रहें, तो इसके फलस्वरूप हम सचमुच ही दुर्बल तथा दुराचारी हो जाते हैं। और यदि हम स्वयं को पवित्र समझने का अभ्यास करें, तो हम पवित्र ही हो जाते हैं। यह मानो एक तरह का आत्म-सम्मोहन[६] है। हम लोग स्वभाव से पवित्र हैं। अनादि अविद्या के सम्मोहन से हम लोग स्वयं को पापी मानने लगते हैं और पापी के समान ही आचरण करते हैं। इस विचारधारा को पलटकर हमें सम्मोहन-मुक्त होना होगा। इसी उद्देश्य के अनुसार हिन्दू-अर्चना की प्राथमिक प्रक्रियाओं का विधान है।

इस प्रकार पूजा का आदि पर्व समाप्त करके पूजक मूर्ति या प्रतीक की अर्चना आरम्भ करता है। अर्चना वस्तुत: विविध उपचारों (वस्तुओं) के द्वारा देवता का सत्कार है। देवता को आमंत्रित करके उत्तम आसन पर बैठाया जाता है; इसके बाद उन्हें स्नान कराकर सुन्दर वस्त्र पहनाये जाते हैं; तत्पश्चात् उन्हें फूल, चन्दन, धूप, दीप तथा विविध व्यंजन निवेदित करके उनकी सेवा की जाती है। चित्तशुद्धि की प्राथमिक प्रक्रियाओं की सहायता से पूजक स्वयं को मानो देवत्व की ओर उन्नीत करता है और उसके बाद विविध लौकिक वस्तुओं के द्वारा देवता की सेवा करके मानो उन्हें मनुष्य-भूमि पर ले आता है। इसके फलस्वरूप थोड़ी देर के लिये पूजक मानो देवता के सान्निध्य में आकर उनके साथ पवित्र मिलन का आनन्द भोगता है।

जिन वस्तुओं के द्वारा प्रतीक या मूर्ति में भगवान की सेवा की गयी, बाद में उन सबको मन-ही-मन अर्पित करके उनकी अर्चना की जाती है। इसको मानस-पूजा कहते हैं। मूर्त वस्तुओं की सहायता से मानस-पूजा का चिन्तन बड़ा ही सरस हो उठता है और इसके प्रभाव से पूजक का मन सहज ही बाह्य जगत् के दायरे से हटकर ईश्वर-चिन्तन में निमग्न हो जाता है। मानस-पूजा के फलस्वरूप साधक का मन स्थूल से सूक्ष्म भूमि में आरोहण करता है, अत: बाह्य पूजा की अपेक्षा अध्यात्म-साधना का यह मानो उच्चतर सोपान है।

इस प्रकार ईश्वर की मनुष्य के समान सेवा करने के बाद आरती नामक प्रक्रिया के द्वारा उनकी लोकोत्तर महिमा-चिन्तन पर बल दिया जाता है। आरती मानो एक तरह की सांकेतिक पूजा है। विग्रह के समक्ष दीपक, शंखस्थित जल, वस्त्र, पुष्प तथा चामर डुलाकर भगवान की सेवा को आरती कहते हैं। ये वस्तुएँ क्रमश: अग्नि, जल, आकाश, मिट्टी तथा वायु – इन पाँच भूतों की प्रतीक लगती हैं। वस्त्र में अनेक छिद्र होने के कारण वह आकाश का प्रतीक है और मिट्टी का विशेष गुण गन्ध होने के कारण फूल उसका सार्थक प्रतीक है। वस्तु-जगत् के मूल उपादान इन पंच भूतों के माध्यम से मानो सांकेतिक रूप से समग्र विश्व ही भगवान को निवेदित करते हुए उनकी पूजा की जाती है। सर्वव्यापी ईश्वर की नरत्व-आरोपित मूर्ति से साधक की दृष्टि को उनके विश्वव्यापी विराट् रूप की ओर प्रसारित करने हेतु यह आरती नामक सांकेतिक पूजाविधि कितनी गम्भीरतापूर्ण तथा अपूर्व है!

होम नामक प्रक्रिया में अर्चना का सार्थक अवसान होता है। विधि के अनुसार प्रज्वलित अग्नि में आहुति देने को होम कहते हैं। यह यज्ञ नामक वैदिक अर्चना-पद्धति का अवशेष है। पूजा के अन्त में यह प्रक्रिया बड़ी महत्त्वपूर्ण है। होम के पूर्व तक पूजक की ईश्वर-विषयक धारणा स्थूल या मानस विग्रह तक सीमित रहती है; होम की सहायता से वह धारणा इस सीमा को पार कर जाती है। होमाग्नि के अधिष्ठातृ-देवता अग्नि के माध्यम से पूजक सगुण ब्रह्म के निमित्त आहुति प्रदान करता है। शास्त्र में यहाँ तक कि समग्र विश्व तथा उसके स्रष्टा सगुण ब्रह्म को भी होमाग्नि में आहुति देने का विधान प्राप्त होता है।[७] समस्त रूपों की सीमा को पार करके निर्गुण परब्रह्म के साथ स्वयं की अभिन्नता की अनुभूति करने के उद्देश्य से ही यह दु:साहसिक विधान है!

अस्तु, उपर्युक्त वर्णन में हिन्दुओं के शास्त्रीय क्रियाकाण्ड का जो अल्पाधिक परिचय प्राप्त हुआ, उससे स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है कि सरस तथा सार्थक आध्यात्मिक साधना के द्वारा चित्त को निर्मल करना ही इनका लक्ष्य है। यदि कोई श्रद्धा तथा निष्ठापूर्वक अनन्य-काम होकर शास्त्रीय क्रियाकाण्डों का अनुष्ठान करे, तो इसके प्रभाव से उसका हृदय अवश्य ही निर्मल होगा और इसके फलस्वरूप उसमें पारमार्थिक सत्य की अनुभूति में समर्थ शुद्ध स्वज्ञा भी जाग्रत होगी। ❖ **(क्रमश:)** ❖

६. Self-hypnosis

७. विश्वं जुहोमि वसुधादि शिवावसानम्। – महानिर्वाणतंत्र, ५म अ.

# माँ श्री सारदा देवी (३)

***आशुतोष मित्र***

यह रचना 'श्रीमाँ' नामक पुस्तक के रूप में १९४४ ई. के नवम्बर में प्रकाशित हुई थी। यहाँ उसके प्रथम तीन अध्याय ही लिये गये हैं। बँगला ग्रन्थ 'श्रीश्री मायेर पदप्रान्ते' से इस अंश का अनुवाद किया है इलाहाबाद की श्रीमती मधूलिका श्रीवास्तव ने। – सं.)

माँ के भाइयों के बारे में यहाँ कुछ लिख रहा हूँ, क्योंकि बाद में इसकी जरूरत पड़ेगी। वे लोग, विशेषकर उनके बड़े तथा मँझले भाई पुजारी ब्राह्मण थे। ये दोनों बारी-बारी से कोलकाता में पूजा करते और रहने के लिए चोरबागान में एक मकान किराये पर लिया था। इसी में माँ के छोटे भाई अभयकुमार[१३] भी रहते थे। उन्होंने प्रवेशिका-परीक्षा पास करके कैम्पबेल में डॉक्टरी पढ़ी थी।

योगीन महाराज के देहत्याग के बाद अभयकुमार विसूचिका रोग से ग्रस्त होकर दिवंगत हुए। उनकी बीमारी के समय माँ पालकी में उन्हें देखने गयी थीं। शरत् महाराज और सुशील महाराज ने रोगी की सेवा की थी। माँ के मुँह से सुना है – "इतनी जल्दी-जल्दी दस्त होते कि सिकोरा लाने का भी समय नहीं मिलता। कितनी बार शरत् और सुशील को हाथ में शौच लेते हुए देखा है।" इस भाई को माँ बड़ा स्नेह करती थीं। अत: उनकी भी मृत्यु से माँ व्यथित हो गयी थीं।[१४]

योगीन महाराज के देहत्याग अर्थात् अपने एक अन्तरंग के देहान्त तथा उसके (करीब ४ माह) बाद भाई अभयकुमार की मृत्यु से माँ इतनी व्यथित हुईं कि उनके लिए कलकत्ते में, विशेषकर इस मकान में रहना कठिन हो गया। अत: सारदा महाराज उन्हें (माँ की जन्मभूमि) जयरामबाटी ले गये।

वे लोग वर्धमान होकर जा रहे थे। रास्ते की घटना बाद में जैसी माँ के मुँह से सुनने को मिली, वैसे ही यहाँ अपनी भाषा में लिपिबद्ध किया है –

दामोदर नदी पार करने के बाद, पालकी न मिलने के कारण माँ बैलगाड़ी में चलीं और सारदा महाराज कन्धे पर लाठी लिये गाड़ी के आगे-आगे पैदल चले। रात आधी से अधिक बीत चुकी थी, लगभग तीसरे पहर का समय था – माँ सो गयी थीं। चलते-चलते सारदा महाराज ने देखा कि बाढ़ के पानी से एक जगह सड़क कट गयी है और वहाँ एक ऐसा गड्ढा है, जिससे बचाकर गाड़ी नहीं जा सकती। गड्ढे पर से ले जाने पर गाड़ी का चक्का टूटने और हचके से माँ की नींद खुलने या उन्हें चोट आने की सम्भावना है। उन्हें (सारदा महाराज को) एक ऐसा उपाय सूझा, जिससे गाड़ी सहज ही निकल जाय और माँ की नींद भी न टूटे। वे औंधे-मुख उस गड्ढे में लेट गये। किसी को कुछ पता न चला। उद्देश्य था कि गाड़ी उनके स्थूल शरीर के ऊपर से निकल जाय। उद्देश्य निश्चय ही महान् था, लेकिन उन्होंने एक बार भी नहीं सोचा कि उनके ऐसा करने से उनकी मृत्यु तो निश्चित है ही, फिर इस निर्जन स्थान तथा गहन रात में उनके सिवा माँ को कौन देखेगा – माँ की रक्षा में कौन तैनात होगा? वे यही दायित्व लेकर तो कलकत्ते से चले थे।

कहावत है – 'होनी को कौन टाल सकता है?' वैसा ही हुआ। गाड़ी के गड्ढे के पास पहुँचते ही सहसा माँ की नींद खुल गयी और चाँदनी में देखकर वे तत्काल सब समझ गयीं। उन्होंने चिल्लाकर गाड़ीवान से गाड़ी रोकने को कहा और नीचे उतरकर सारदा को उनके इस कार्य के लिए खूब डाँटने के बाद उन्होंने पैदल वह गड्ढा पार किया। खाली गाड़ी सहज ही गड्ढे पर से निकल गयी, वैसे सारदा महाराज को धक्के लगाने पड़े थे। बाद में उनकी निष्ठा तथा गुरुभक्ति की विशेष प्रशंसा करते हुए माँ ने हम लोगों को यह घटना सुनायी थी।

एक बार माँ के जयरामबाटी में रहते मेरे मन में वहाँ जाने की इच्छा हुई। सारदा महाराज से बताने पर उन्होंने उत्साहित किया और स्वयं आटा, मैदा, चीनी, मिस्री, नारियल तेल, आम, मिठाइयाँ आदि विभिन्न चीजें खरीदकर उन्हें एक बड़ी टोकरी में बाँध दिया। उन्होंने वर्धमान के रास्ते में पड़नेवाले धर्मशालों के नाम तथा उनकी आपस में दूरी, कहाँ क्या प्राप्त होता है, आदि सब बातें लिख दीं। लेखक के मित्र सुप्रसिद्ध पण्डित मोक्षदा-चरण सामाध्यायी भी साथ चले।

मेरे मित्र के एक सम्बन्धी वर्धमान के राज कॉलेज में शिक्षक थे। पहली रात हमने उन्हीं के घर बितायी। अगले दिन हमने दामोदर पार करके ठाकुर के जन्मस्थान कामारपुकुर के लिए एक बैलगाड़ी किराये पर लिया। दोपहर को उचालन नामक चट्टी में हमने शिक्षक द्वारा दी हुई चीजें खायीं। वह

१३. वास्तविक नाम अभयचरण। (श्रीमाँ सारदादेवी, ५म सं. पृ,२३)

१४. अभयचरण की मृत्यु २ अगस्त १८९९ को हुई। इसके थोड़े ही दिनों पूर्व उन्होंने कैम्पबेल मेडिकल कॉलेज की अन्तिम परीक्षा दी थी।

रात द्वारकेश्वर के तट पर एकलखी नामक चट्टी में बीती। अगले दिन दोपहर से पूर्व हम कामारपुकुर पहुँच गये।

कामारपुकुर में हम ठाकुर के घर में ठहरे। उस समय वहाँ उनके भतीजे शिवराम थे। उनकी सहायता से हमने ठाकुर की सभी बाल-लीलाओं के स्थान देखे। रघुवीर मन्दिर, हालदार-पुकुर, भूतिर खाल, शिव मन्दिर – सब देखा। उस दिन वहाँ बाजार था। हमने माँ के घर के लिए सामान खरीदा और कुली के सिर पर सब रखवाकर शाम को जयरामबाटी लौटे। रास्ते में आमोदर नदी को पार करके हलदी और पुकुरे गाँव पारकर शाम को माँ के पास पहुँचे। धूलयुक्त पाँवों से ही माँ को प्रणाम किया। हमें देखकर वे खूब आनन्दित हुईं। हमारे ठहरने की व्यवस्था करने के बाद वे जल्दी-जल्दी मैदा सानकर सब्जियाँ काटने बैठीं। शीघ्र ही हमें खाने को पूड़ियाँ, चने की दाल, आलू का दम, कुम्हड़े की चटनी तथा दूध मिला। उन्होंने स्वयं बैठकर हमें खिलाया और परोसती भी रहीं। माँ के हाथ का खाना मैंने अपने जीवन में पहली बार खाया था। ठीक कलकत्ते के भोजन की तरह स्वादिष्ट लगा। पर साथ ही यह सोचकर दुख भी हुआ कि हमारे कारण माँ को कितना कष्ट उठाना पड़ा! अत: खाते-खाते उनके साथ (मधुर) विवाद भी होने लगा। मैं बोला – "हम नहीं चाहते कि हमारे लिए आपको परिश्रम करना या उद्विग्न होना पड़े – आपको यह सब करने की जरूरत नहीं। हमें भात खाने की आदत है – सबकी तरह हम भी भात खायेंगे।" वे बोलीं – "बच्चों के लिए माँ न करे, तो कौन करेगा?" इसी तरह का और भी काफी कुछ कहने लगीं। लेकिन जब उन्होंने देखा कि हम अपनी बात पर अड़े हुए हैं, तो वे चुप हो गयीं। अगले दिन से हम मामियों का बनाया भात खाने लगे।

ठीक इसी प्रकार एक बार और माँ के साथ तर्क करना पड़ा था। उस बार साथ में कालीकृष्ण महाराज (स्वामी विरजानन्द) भी थे। उस बार भी पहली रात माँ ने अपने हाथों से पूड़ियाँ आदि बनाकर खाने को दिया था।

एक दिन दोपहर में माँ अपने कक्ष में आराम करते-करते बातें करने लगीं। उचित अवसर देख मैंने उनके एक शिष्य के बारे में पूछा – "अमुक आपको प्रणाम करने क्यों नहीं आ पाते थे?" पहले मैंने इस विषय में मठ में सब कुछ सुना था, अब उनके स्वयं के श्रीमुख से सुनने की इच्छा थी। उस समय कमरे में माँ और लेखक के सिवा और कोई नहीं था। उन्होंने उत्तर दिया – "मुझे प्रणाम करने आया, तो एक छुरी निकालकर अपने गले पर चलाने जा रहा था!" मैं तर्क करने लगा – "माँ, जरा सोचिए, उसका कार्य तो ठीक नहीं था, पर उसका उद्देश्य तो बुरा नहीं था। साधना में बाधा आ रही थी, मन ध्यान-जप में नहीं बैठ रहा था, इसीलिए तो वह आपके द्वारा सृष्ट प्राणों को आपके ही पादपद्मों में आहुति देने का प्रयास कर रहा था!" माँ बोली – "बेकार की बातें मत करो। मुझे क्या उसने पत्थर की मूर्ति समझ लिया था या कालीघाट की काली मान लिया था, जो बलि देने आया था! उसी समय से उसका आना बन्द करवा दिया।"

– "उस समय आप बड़ी कठोर हो गयी थीं, पर बाद में आपको फिर नम्र होना पड़ा अर्थात् उस समय आपने उसे अपनी भयंकरी मूर्ति दिखायी थीं और बाद में फिर उसी स्नेहमयी मूर्ति में प्रगट होना पड़ा था!"

माँ (हँसते हुए) – "बेकार की बातें मत करो। लड़कों के बहुत कहने पर आने दिया – अकेले नहीं आ पाता, कोई-न-कोई साथ रहता है और प्रणाम करके ही चला जाता है।"

अस्तु, जयरामबाटी में हम लोगों के पहली बार रहते-रहते ही माँ की भतीजी नलिनी का विवाह हुआ। लड़का हुगली जिला के गोहाट गाँव का निवासी था। लड़के का नाम प्रमथनाथ भट्टाचार्य था। इन प्रमथनाथ के बारे में हम आगे चर्चा करेंगे, इसलिए यहाँ नाम दिया। मामा लोगों (माँ के भाइयों) ने माँ से हम लोगों (मुझे तथा मोक्षदाचरण को) को कहलवाया कि हम लोग विवाह में बरातियों के साथ तर्क करें। उन दिनों गाँवों में विवाह के समय वर और कन्या पक्ष के बीच तर्क करने की प्रथा प्रचलित थी। विवाह की रात भानु बुआ के घर हमारे सोने की व्यवस्था हुई। उस रात भानु बुआ माँ के घर थीं और उनका घर सूना रहने के कारण हम लोग वहीं सोये। आधी रात के समय वर के आने पर भानु बुआ हाथ में दीपक लिये आकर हमें बुलाकर ले गयीं।

हम लोग आकर दालान में बैठे और बारातियों से पूछा कि उनमें से कोई अंग्रजी में तर्क करने को तैयार है क्या? उत्तर आया कि उनमें कोई अंग्रेजी नहीं जानता। मोक्षदाचरण ने पुछवाया कि कोई संस्कृत में प्रश्नोत्तर करेगा क्या? इस पर भी वही नकारात्मक उत्तर मिला। अत: उनके अनुरोध से मोक्षदाचरण ने शास्त्र के आधार पर 'विवाह' शब्द के अर्थ की व्याख्या करते हुए एक छोटा-सा व्याख्यान दिया।

नलिनी के विवाह के पूर्व तथा बाद में जितने भी दिन मैं जयरामबाटी में था, प्रतिदिन दोपहर में माँ के भोजन के बाद विश्राम के समय उनके कमरे में जाता और उनसे बहुत-सी बातें सुनता। यहाँ पर मैं उनमें से कुछ महत्त्वपूर्ण तथा रोचक बातों का उल्लेख करता हूँ। इनमें से अधिकांश बातें मुझे पहले से ज्ञात थीं, पर माँ के मुँह से सुनने के अभिप्राय से मैं उन्हें पूछता और वे उत्तर देतीं।

माँ – हाँ, सारदा (बाद में स्वामी त्रिगुणातीतानन्द) को ठाकुर ने नौबतखाने में मेरे पास मंत्र लेने भेजा था। योगीन (बाद में स्वामी योगानन्द) ने भी लिया। पर वह बड़ा संकोची था न, भूल गया था, दुबारा वृन्दावन में देना पड़ा।

"सारदा को पैसे देने की बात कह रहे हो? मेरे तो प्राण

ही ठाकुर के पास पड़े रहते थे ! उनके कमरे में क्या हो रहा है, वे वहाँ किससे क्या कह रहे हैं – मैं नौबत में बैठी सब सुनती-जानती रहती थी। सारदा घर जायेगा, उससे बोले – गाड़ी का किराया[१५] नौबत से ले ले। मैंने तत्काल चार पैसे नौबत के दरवाजे की चौखट पर रख दिये और किनारे हट गयी। सारदा ने आकर पैसे देखे और ले गया।

''नरेन का भी वैसे ही था। उससे ज्योंही कहते, 'आज तू यहीं रहेगा', त्योंही उसे सुनकर चने की दाल चढ़ा देती। शौच के लिए जाते समय वे नरेन के भोजन के बारे में बताने आये, तो देखा कि दाल पक रही हैं और मैदा भीग रहा है। मुझसे कह रखा था – नरेन जिस दिन खायेगा, उसके लिए मोटी रोटियाँ और चने की दाल पकाना। वह सब पचा सकता है, मूंग की दाल और पतली रोटियाँ नहीं चलेंगी।

''हाँ बेटा, नौबत में जो दिन बीते हैं, उसे कौन समझेगा ! नटी की माँ[१६] योगेन, गोलाप ने जो-जो देखा है, सभी कहते – 'माँ, इतने छोटे कमरे में कैसे रहती हो?' कमरा तो तुमने देखा ही है? इतने छोटे कमरे में ऊपर छीके में सारी चीजें झूल रही हैं – एक गृहस्थ के घर में व्यक्ति को जिन-जिन चीजों की जरूरत होती है – मसाले वगैरह सब। सीधे खड़े होने की गुंजाइश नहीं थी – खड़े होते ही सिर टकराता, सिर बार-बार टकराकर फूल गया था। फिर फर्श पर चावल, दाल, हंडियाँ, सील-लोढ़ा, चौकी-बेलन, चूल्हा – सब कुछ रहता। फिर जगह ही कितनी बचती ! उसी में उठती-बैठती, फिर ठाकुर यदि किसी महिला से ठहरने को कहते, तो वह भी मेरे साथ उतनी-सी ही जगह में सोती, कभी-कभी उसे सुलाकर मुझे बैठे-बैठे रात गुजारनी पड़ती थी !

''हाँ ! मन्दिर में किसी के जागने के पहले ही उठ जाती। तब भी खूब रात रहती। कोई कभी मुझे देख नहीं सका। सब काम निपटाकर गंगा नहाने जाती। शुरू-शुरू में बड़ा भय लगता, पर बाद में देखा कि मेरे नहाते समय नौबत से एक प्रकाश सीधे गंगा तक दिखाई देती, और मैं उसी रोशनी में नहा आती। नहाकर लौटते ही वह रोशनी बुझ जाती।

''बागदी और बागदी बहू की बात पूछते हो? जयरामबाटी के भूषण मोड़ल को तो तुमने देखा है ! उसकी माँ और कुछ स्त्रियाँ गंगा नहाने जा रही थीं। मैंने भी उनके साथ जाने की जिद की। मैंने सोचा – वे लोग गंगा नहाकर लौट आयेंगी और मैं ठाकुर के पास रह जाऊँगी। मुझे जाते देख, लक्ष्मी (ठाकुर की भतीजी) और शिबू (ठाकुर के भतीजे) भी मेरे साथ हो लिये। कामारपुकुर से जहानाबाद (अब आरामबाग) तक गयी। साथ के लोग – अभी दिन बाकी है – देखकर वहाँ ठहरे नहीं – आगे बढ़ गये। बोले – संध्या होने के पूर्व ही तेलो-भेलो का मैदान पार कर लेंगे। लेकिन मैं आगे चल नहीं सकी। कष्ट होने लगा। पिछड़ गयी – कभी उन लोगों की तरह चलने का अभ्यास तो था नहीं ! फिर भी जैसे-तैसे चलती रही। उस तेपान्तर के मैदान में अकेले ही चली जा रही थी। वहाँ डकैतों का बड़ा आतंक है। बचपन से ही बहुत-सी घटनाएँ सुनती थी। शाम हो गयी, फिर भी चलती रही, शरीर थककर चूर हो गया था। तभी देखा – सामने से एक आदमी, जिसके सिर पर रुखे-सूखे बाल, हाथ में चाँदी का कड़ा, खूब काले रंग का, हाथ में लाठी लिये मेरी ही ओर आ रहा हैं। मैं ठिठककर खड़ी हो गयी। पूरे शरीर के रोंगटे खड़े हो गये। बागदी जाति के उस आदमी ने डकैतों की तरह कठोर शब्दों में पूछा, 'तू कौन है?' और मेरी तरफ मुँह फाड़कर देखने लगा। उसकी स्त्री भी आ गयी। उस स्त्री को देखकर मुझे साहस हुआ। बोली – 'पिताजी, मैं सारदा, तुम्हारी बेटी हूँ, तुम्हारे दामाद के पास जा रही हूँ, मेरे संगी आगे निकल गये हैं – दया करके मुझे पहुँचा दीजिए।' ''

माँ आगे भी कुछ कहने जा रही थीं कि मैंने रोककर कहा – ''डकैत-पिता के बारे में और बताने की जरूरत नहीं, माँ ! जिसने भी ठाकुर की जीवनी पढ़ी है, उसे यह सब ज्ञात है। मैं जो जानना चाहता हूँ, वही बताइये।''

उन्होंने पूछा – ''क्या?''

मैं – डकैत ने आपकी ओर देखकर आश्चर्यचकित होकर क्या देखा था?

माँ – उसने बाद में बताया – काली-रूप में देखा था।

मैं – तो आपने उसे काली-रूप में दर्शन दिया था? माँ, बात को छिपाइयेगा मत, साफ बोलिए।''

माँ – मैं भला क्यों दिखाऊँगी? वह बोला कि उसने देखा था।

मैं – इसी से हो गया – आपने दिखाया था। नहीं तो, उसने अन्य किसी स्त्री को नहीं देखा, आप में ही तो देखा? आप स्वीकार कीजिये या मत कीजिए, पर यह स्वत:सिद्ध है कि आपने दर्शन दिया था।''

माँ (हँसकर) – अब तुम चाहे जो कह लो।

मैं समझ गया कि ठाकुर द्वारा 'राख में लिपटी बिल्ली' कहने का क्या अर्थ है। बोला – ''पर माँ, मैं तो उस काली-वाली-रूप में आपको नहीं देखना चाहता। मैं आपको इसी रूप में देखना चाहता हूँ – आप माँ और मैं आपका बेटा !

माँ (सहास्य) – ठीक ही तो है बेटा ! मेरी भी जान बची। मुझे भी जीभ निकालकर खड़े नहीं होना पड़ेगा।

❖ (क्रमशः) ❖

१५. उन दिनों वराहनगर बाजार से विडन स्क्वायर तक का घोड़ेगाड़ी का भाड़ा एक आने था। ठाकुर ने सारदा को माँ से लेने को कहा था।

१६. 'श्रीरामकृष्ण-वचनामृत' के लेखक श्री 'म' की धर्मपत्नी। वही उनके बड़े पुत्र का घर का नाम हैं।

# चाँदनी का आलोक

*स्वामी सर्वगानन्द*

लेखक रामकृष्ण संघ के बँगला मासिक 'उद्बोधन' के पूर्व सम्पादक हैं। यह कथा 'कलाबौ' नामक बँगला मासिक के २००४ ई. के शारदीय अंक में प्रकाशित हुई थी। स्वामी प्रपत्त्यानन्दजी ने वहाँ से 'विवेक-ज्योति' के लिये इसका सुललित हिन्दी अनुवाद किया है। – सं.)

गेटिस्बर्ग से बाल्टीमोर करीब ७० मिनट का रास्ता है। २००४ ई. का बंग-संस्कृति-सम्मेलन वाशिंग्टन के निकट स्थित इसी सुन्दर नगर में आयोजित हुआ था। डॉ. मित्र अपनी नतिनी के साथ बातें करते हुए ११० किलोमीटर प्रति घण्टे की रफ्तार से गाड़ी चला रहे थे। मार्ग के दोनों ओर मैग्नोलिया ग्लैंडिफोस के वृक्षों की पंक्ति थी। थोड़ी दूर पर एक बड़ा रेड-वुड का वृक्ष दिख रहा है।

मि. केनेडी बाल्टीमोर में रहते हैं। उनका बहुत दिनों का बकाया निमंत्रण इस सप्ताहान्त में चुका देना होगा। डॉ. जगन्नाथ मित्र गेटिस्बर्ग के एक स्कूल के प्रधानाध्यापक हैं। ये सुदीर्घ ३० वर्षों से अमेरिका में हैं। और मि. पीटर केनेडी अमेरिका के एक पारिवारिक व्यवसायी हैं। आयु ५१-५२ वर्ष होगी। दोनों के बीच स्कूल की उन्नति के बारे में बातें होती थीं। क्रमश: उनके बीच मित्रता हो गयी।

उमा की उम्र १५ वर्ष है। नवीं कक्षा में पढ़ती है। गाड़ी के पिछली सीट पर बैठी वह दादाजी के लैपटाप कम्प्यूटर में www.sarada.com खोज रही थी। इन नाम का वेबसाइट अब तक नहीं बना था। तो भी उसे कुछ सूत्र मिल गये। तभी लैपटाप में माँ का पैर फैलाया हुआ चित्र उभर आया।

उन्हें देखते हुए उमा सोच रही है – "क्या ये भगवान की पत्नी हैं? पिताजी से सुना है कि 'माँ' को आद्याशक्ति मानना चाहिए। तो फिर निराकार और अनन्त ईश्वर पंचतत्त्व की देह में कैसे प्रवेश करेगा? वैसे उस दिन माँ ने एक सुन्दर दृष्टान्त दिया था।" उमा माँ की बात याद करने की चेष्टा करने लगी – "हाँ, याद आया। माँ ने कहा था – यदि एक ओस-कण में पूरा आकाश प्रतिबिम्बित हो सकता है, तो मनुष्य-शरीर में अनन्त ईश्वर क्यों नहीं आ सकता? ठीक ही तो है!"

उमा ऐसी ही अनेकों बातें सोचती रही। तभी सहसा उसके कानों में 'क्रिसमस इव' के गीत की यह पंक्ति सुनाई दी। उसके दादाजी गाड़ी के सी. डी. प्लेयर में कुछ केरोल या धार्मिक गीत बजा रहे थे। ईसा का महिमा-गान चल रहा था – "Radiant beams from thy holy face, with the dawn of redeeming grace" आदि। उमा सोचने लगी – "ठीक ही तो, माँ के चेहरे से मानो ज्योति प्रस्फुटित हो रही है और उनकी क्या ही अद्भुत करुण दृष्टि है! जब हम ईसा के अवतारत्व को लेकर कोई प्रश्न नहीं करते, तो माँ के बारे में क्यों करेंगे?" उमा को कोई उत्तर नहीं मिल रहा था।

उमा ने डॉ. मित्र से पूछा – "दादाजी! माँ, क्या जो इच्छा होती, वही कर सकती थीं?"

डॉ. मित्र ने प्रतिप्रश्न किया – "बेटी, तुम जरा अपने प्रश्न को और भी स्पष्ट रूप से कहो तो?"

उमा – "ऐसा है कि माँ तो ईश्वरी थीं। क्या वे इच्छा होने पर, जो चाहे कर सकती थीं?"

– "करने में सक्षम होने पर भी नहीं करती थीं।"

दादाजी के इस टेलीग्राफिक उत्तर को उमा ठीक से समझ नहीं सकी। उसे लगा – "यदि मुझे ऐसी क्षमता और आजादी मिल जाती, तो कितना कुछ बना देती – स्कूल, मकान, उद्यान, मन्दिर, पशुशाला, अस्पताल और भी बहुत कुछ।" उमा ने माँ की बहुत-सी बातें सुनी है। नाना-नानी दोनों ही रामकृष्ण मिशन से दीक्षित हैं। इसलिए श्रीरामकृष्ण-वचनामृत, स्वामी विवेकानन्द से वार्तालाप, स्वामी विवेकानन्द के संस्मरण, श्रीमाँ सारदा देवी आदि पुस्तकें उसके घर में हैं। उमा अभी भी हिन्दी पढ़ने में उतनी अभ्यस्त नहीं है, अत: अँग्रेजी पुस्तकें पढ़कर ही अपनी जिज्ञासा मिटाती है।

दादाजी के लैपटाप कम्प्यूटर में एक लिंक जुड़ा – www.Udbodhan.org. बिना बिचारे ही उमा ने उसे क्लिक कर दिया। धीरे-धीरे वह वेबसाइट खुलने लगा। जैसे प्राचीन काल में देवताओं का अवतरण होता था, वैसे ही ठाकुर-माँ-स्वामीजी के चित्र उभरने लगे। उमा सोचने लगी – "प्राचीन काल में जो लोग देवी-देवताओं का दर्शन पाते थे, लगता है वे लोग भी इसी प्रकार क्रमश: उभरते हुये दिखते थे। सम्भव है उन लोगों की आँखों के समक्ष आकाश के समान एक बड़ा फ्लैट-स्क्रीन खुल जाता हो। अभी जैसा www (world wide web), सम्भव है उस समय cww (cosmic wide web) रहा हो। वहाँ से देवताओं की प्रतिमा चली आती होगी और दूर-स्थित वक्ता की आवाज में वे लोग देववाणी सुनते होंगे।" उमा ने देखा कि एक गैलरी का लिंक है। यह वही भवन है, जिसमें श्रीमाँ रहती थीं। जगज्जननी दशभुजा महिष-मर्दिनी दुर्गा या काली-तारा-भैरवी, अथवा सीता-राधा-विष्णुप्रिया और इस युग में वे माँ सारदा का रूप धारण कर इस संसार में आयी हुई हैं। असम्भव प्रतीत होने पर भी उमा को सोचने में अच्छा लग रहा था। माँ के घर के प्रवेश-द्वार को देख उमा को याद आया कि तीन वर्ष पहले वह पिताजी के साथ वहाँ गयी थी। यह वही दरवाजा है, जिससे होकर

माँ आवागमन करती थीं। यह वही भवन है, जहाँ स्वामी रामकृष्णानन्दजी ने महाप्रयाण किया था। स्वामी सारदानन्दजी महाराज से लेकर ठाकुर के कितने ही शिष्य-प्रशिष्यों ने इस भवन में पदार्पण किया है। अब उमा के सामने मातृ-भवन देवालय था। इसी कमरे में माँ रहती थीं। माँ ठाकुर की पूजा करती थीं, वह चित्रपट भी है। माँ के द्वारा उपयोग में लाई गई चारपाई, माँ का चरणचिह्न – सभी चीजें उसे स्पष्ट याद आ रही हैं। जब स्वामी सारदानन्दजी वहाँ रहते थे, तब पूरे रामकृष्ण मिशन का प्राशासनिक संचालन वहीं से होता था।

अब उमा के सम्मुख मायेर बाड़ी की छत से गंगाजी दीख रही हैं। कम्प्यूटर के स्क्रीन में दूरस्थ बेलूड़ मठ में स्थित रामकृष्ण-मन्दिर का शिखर तथा काशीपुर गन-शेल फैक्ट्री की तीन बड़ी चिमनियाँ भी दीख रही हैं। क्या ही सुन्दर दृश्य है ! गंगाजी के ऊपर इधर-उधर कुछ नावें और एक स्टीमर सरसराते हुए चला जा रहा है। अरे ! बागबाजार मुहल्ले के ऊपर रेलवे-पुल भी कितना सुन्दर दिखाई दे रहा है ! अमेरिका की सड़क पर ही उमा मानो माँ-के-घर में पहुँच गयी।

उमा ने पूछा – "दादाजी ! क्या आपने इस वेबसाइट को देखा है?" दादाजी ने प्रतिप्रश्न किया – "कौन-सा?"

उमा ने उल्लसित कण्ठ से कहा – "उद्बोधन का यह वेबसाइट मैं आपको और एलिस को एक साथ दिखाऊँगी।"

एलिस मि. पीटर कैनेडी की इकलौती पुत्री और कॉलेज में प्रथम वर्ष की छात्रा है। कम्प्यूटर पर उसकी अच्छी पकड़ है। बचपन से ही वह साधारण लड़कियों की तरह बिल्कुल भी नहीं है। आयु बीस के ऊपर है। पढ़ाई-लिखाई में सदा औवल रहती है। पर लगता है मानो किसी अन्य जगत् की हो। बातें करते हुए अन्यमनस्क हो उठती है। उमा के साथ उसका बड़ा लगाव है। उसके आने पर सारा समय उसी के साथ बिताती है और माँ की बात सुनना उसे खूब पसन्द है।

एक ओर ठाकुर और दूसरी ओर माँ के चित्रवाला एक लाकेट उमा ने एलिस को दिया था। उसे पाकर वह कितनी आनन्दित थी ! हमेशा गले में पहने रहती है। डॉ. मित्र के साथ भी एलिस का बड़ा प्रेम है। डॉ. मित्र भी जब एलिस को भारतीय महापुरुषों के जीवन की घटनाएँ बताते हैं, तब वह उन्हें बड़ी एकाग्रता के साथ सुनती है। फिर बीच-बीच में डॉ. मित्र के साथ व्यंग-विनोद भी करती है। एक दिन बच्चों की भाँति उसने डॉ. मित्र से पूछा – 'दादाजी, बिस्कुट का नाम क्रीमक्रैकर क्यों पड़ा?" दादाजी ने हँसकर कहा – "अरे, तुम नहीं जानती? क्रीमेण क्राकयति इति क्रीम-क्रैकर।" एलिस पहले तो मुँह बाँये आश्चर्य से देखती रही। बाद में उमा को मुख दबाकर हँसते देखकर वह समझ गयी कि दादाजी विनोद कर रहे हैं। दादाजी ने स्पष्ट रूप से कहा – "Only cream can crack it, and none else. Hence it is Cream-cracker."

सुबह के आठ बज रहे हैं। पिछले दिन अचानक बहुत ठण्ड पड़ी थी, इसलिए कमरे की केवल एक खिड़की खुली है, बाकी सब बन्द हैं। बैंडेज जैसा कुछ खोजते हुए सहसा एक पुरानी त्रैमासिक पत्रिका एलिस के हाथ लगी, नाम था – "Vedanta for East and West"। उसमें लन्दन के किसी प्रकाशक का नाम है। पत्रिका हाथ में लेकर उलटते-पलटते एलिस को उसमें एक चित्र दिखा, जिसमें श्रीमाँ और भगिनी निवेदिता आमने-सामने बैठी हुई हैं। एक ड्रॉअर से गुच्छे जैसी कोई चीज निकाल कर वह बैंडेज जैसा कुछ खोज रही थी। कल घर सजाते समय उमा की अँगुली थोड़ी-सी कट गयी थी। इस घर में आज वे लोग माँ की पूजा करेंगे। उन्हें भोग निवेदित करेंगे। मि. केनेडी बड़े उत्साहित हैं।

श्रीमाँ की सार्ध-शताब्दी पूरी हुई है, इसलिए दोनों बहनों ने पूरे मकान को रंगीन कागज से सजाया है। कई जगह गुब्बारे बाँधकर लटकाये गये हैं। चारों ओर एक उत्सव का माहौल है। पिछली रात एलिस किसी प्रकार थोड़ा-सा डेटॉल लगाकर, कपड़े से बाँधकर उमा से बोली – "अभी सो जाओ, कल सब ठीक हो जाएगा।" मगर वह तात्कालिक व्यवस्था थी, इसलिए एलिस के मन में थोड़ा कुछ रह गया था, इसलिए वह सबेरे ही बैंडेज ढूँढ़ने के लिये व्यग्र हो गयी। उमा अभी भी सो रही है।

सब कुछ छत्राकार में फेंककर एलिस उठकर खड़ी हो गयी। हाथ में लिये हुए चित्र को ठीक से देखने के लिए वह खिड़की के पास गयी, क्योंकि वहाँ प्रकाश अधिक था। – "कितना सुन्दर है माँ का मुख ! ग्रामीण महिला होकर भी मुख की कैसी दिव्य सुन्दरता है !" एलिस मन-ही-मन सोचने लगी – "माँ, मानो कितने दिनों से परिचित हों।"

माँ का यह असाधारण मातृत्व केवल मनुष्यों के लिए ही नहीं पशु-पक्षियों के लिए भी प्रसारित था। माँ की बातें सोचते-सोचते एलिस का हृदय मानो विशाल होने लगा। एलिस शान्त दृष्टि से खिड़की से सड़क की ओर देखती रही। दो सफेद बगुले सामने से फरफरा-कर उड़ गये। केले के नये पत्तों-जैसे रंग की एक छोटी-सी चिड़िया खिड़की पर आकर बैठी और तत्काल उड़ गयी। कुछ दूर स्थित पार्क के दूसरे छोर पर एक एम्बुलेंस खड़ी-खड़ी कुत्ते की पूँछ हिलाने जैसी अपनी नीली बत्ती नचाते हुए चल रही है। एलिस ने सहसा सामने के पेड़ पर एक हरे रंग का गिरगिट देखा और उसके सामने ही एक बड़ी सुन्दर तितली थी। गिरगिट ने अचानक तेजी से जाकर तितली को पकड़ लिया। इसके बाद हम लोगों के सामने फास्ट-फुड आने पर जैसा होता है, वही हुआ। इधर एलिस की मातृत्व-चेतना और विचार-बुद्धि में घोर द्वन्द्व शुरू हो गया। वह अपने मातृत्व-बोध से इस

तितली के प्रति प्रगाढ़ ममतावश उसकी सुरक्षा के बारे में सोचने लगी और स्वयं को धिक्कारने लगी – ''जरा-सी सावधानी से ही तो मैं एक लकड़ी या कंकड़ फेंककर गिरगिट को भगा सकती थी। पहले नहीं समझी कि मैं इतनी मूर्ख हूँ।'' और उसका तर्कालु मन कहने लगा – ''तितली की रक्षा की बात ही निरर्थक है। उसे तो खा जाना ही उचित है। ऐसा नहीं होने से – अर्थात् खाद्य-खादक के विषय में बाधा पड़ने से तो पर्यावरण-चक्र बाधित हो जायेगा।''

एलिस का मन अपने आप ही दो भागों में बँट गया। वह सोचने लगी – ''सभी तो माँ की ही सन्तान हैं। तो फिर इस संसार में इतनी हिंसा क्यों है?'' उसकी यथार्थवादी सत्ता बोल उठी – ''निश्चय ही यह सब होना उचित है? सभी सुख से रहना चाहते हैं। स्वयं जीने के लिये यदि कोई दूसरे का भक्षण करे, तो इसमें दोष कहाँ है? ऐसे ही तो यह संसार चल रहा है।'' एलिस की मातृसत्ता चिल्ला उठी – 'नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। यह उचित नहीं है। बाघ-सिंह की तरह अन्य की क्षति करके, दूसरों की हत्या कर जीने का फार्मूला पशु-राज्य में चल सकता है, लेकिन मानव-समाज में यह फार्मूला नहीं चल सकता। मनुष्य में मनुष्यत्व है। वहाँ भगवान ने आत्म-त्याग की शिक्षा दी है, प्रेम सिखाया है। सुन्दरता को समझने के लिये मन दिया है। यहाँ यदि ''दूसरे के दुख में, परपीड़ा में किसी की आँखों से आँसू न गिरे, तो क्या वह भी मनुष्य है?'' – यह बात माँ सारदा ने ही तो सिखाया है। वे कोई कम यथार्थवादी नहीं थीं।'

एलिस की यथार्थवादी सत्ता हो-हो कर हँसने लगी। कहने लगी – ''बात सुननेवाले लोग हैं कहाँ? सभी तो स्वार्थी हैं और दूसरे का रक्त चूसकर बड़े होते हैं। दूसरे का प्राण ही उनका भोजन है।'' एलिस की आँखों के कोने-से एक बूँद अश्रु-बिन्दु टपक पड़ा। सहसा न जाने किसने पीछे से दोनों हाथों से एलिस की आँखों को दबाकर पकड़ लिया। उसकी खिल-खिल हँसी सुनकर एलिस को पहचानते देर नहीं लगी कि उमा सोकर उठ चुकी है। उमा के हाथ में एलिस की आँख का आँसू लग गया। उमा विस्मित होकर एलिस की आँख में आँख मिलाकर पूछने लगी – ''दीदी, तुम क्यों रो रही हो? तुम्हें क्या हुआ है?'' एलिस लज्जित होकर हाथों से आँसू पोंछकर प्रश्न को टाल गयी – ''अरे वह कुछ नहीं है, ये लो तुम्हारे लिये जॉनसन का ल्यूको-प्लास्ट लायी हूँ।'' उमा हँसकर हाथ हटाते हुए बोली – ''यह देखो सब ठीक हो गया है। तुम्हारा प्रेम ही सबसे बड़ी दवा है।'' एलिस मौन रह गयी।

एलिस हाथ में एक धातु की छड़ी लिये कम्प्यूटर के सामने बैठी डॉ. मित्र को समझा रही है कि मैनेजमेंट – प्रबन्धन में मातृत्व का कैसे समावेश किया जाय। कम्प्यूटर में एक मस्तिष्क का चित्र दीख रहा है; उसके पास ही मछली के रीढ़ की हड्डी है। यह सजीव चित्र एलिस ने स्वयं ही बनाया है। डॉ. मित्र की बायीं ओर उमा और दाहिनी ओर मि. कैनेडी बैठे हैं। एलिस अपने लैपटॉप कम्प्यूटर की सहायता से समझा रही है कि आधुनिक मैनेजमेंट के सारे पैरामीटर यथावत् रखकर भी कैसे 'मातृत्व' नामक एक मास्टर पैरामीटर की सहायता से प्रशासनिक काम चलाना सम्भव है।

एलिस कहने लगी – ''आजकल देखा जा रहा है कि मछली की रीढ़ संरचना का मैनेजमेंट ही सर्वाधिक उपयोगी है। मस्तिष्क के प्राय: सभी अंशों को वैज्ञानिक लोग जानते हैं। कुछ अंशों की कार्यप्रणाली ही अब तक अज्ञात है।'' मि. कैनेडी अवाक् होकर अपनी पुत्री की बातें सुन रहे हैं।

– ''मस्तिष्क का जो भाग अज्ञात है, मैं उसी पर काम कर रही हूँ और हमारी धारणा है कि इसी भाग में ही मानव की 'मातृत्व-चेतना' छिपी हुई है। मानव का मेरुदण्ड करीब १८ इंच लम्बा है। उसका भी कुछ-कुछ अंश अब तक अज्ञात बना हुआ है। मस्तिष्क की संदेशवाही बातें जब मेरुदण्ड में से होकर मोटर न्यूरान में पहुँचती है, तब एक प्रतिक्रिया होती है। जब विपरीत दिशा से बाह्य कारण से शरीर में प्रतिक्रिया होती है, तब वह सेंसरी फाइबर की सहायता से मेरुदण्ड से होती हुयी मस्तिष्क में पहुँचती है। इन सभी आदान-प्रदानों के बीच एक अद्भुत नियम-शृंखला है। उसके साथ और भी एक चीज है, जिसे वैज्ञानिक लोग अब तक नहीं पकड़ सके हैं। वे उसे 'अज्ञात वस्तु' कहते हैं। भारतीय भक्ति-शास्त्र में इसी को 'प्रेम' कहते हैं।''

डॉ. मित्र और उमा ने आँखें उठाकर एक-दूसरे की ओर देखा। डॉ. मित्र ने पूछा – ''एलिस ! क्या तुमने भारतीय भक्ति-शास्त्र पढ़ा है?'' एलिस बोली – ''मैंने केवल माँ सारदा की जीवनी पढ़ी है। इस प्रेम का ही बाह्य प्रकाश है 'मातृत्व'। वही मातृत्व जब दैहिक स्तर पर आबद्ध रहता है, तब उसका बोध भिन्न प्रकार से होता है, परन्तु देहातीत दिव्य चेतना के स्तर पर इसका अनुभव पूर्णत: भिन्न होता है। हर प्राणी में यह दिव्य मातृशक्ति अप्रकाशित, अल्प-प्रकाशित या अधिक प्रकाशित रहती है, चाहे वह इसे जाने या न जाने। हमारी धारणा है कि श्रीमाँ में यह अज्ञात तत्त्व ही खूब सक्रिय था। उसके द्वारा वे अपनी विश्व-मातृत्व की अभिव्यक्ति का स्वयं काफी उपयोग करती थीं। है न दादाजी?'

डॉ. मित्र ने कहा – 'वह सब तो मैं नहीं समझता, पर तुम यह सब चिन्तन कैसे कर रही हो, यही मेरे लिये सबसे बड़ा प्रश्न है।'' उमा अवाक् होकर एलिस की ये बातें सुन रही थी और समझने का प्रयास भी कर रही थी। तभी चाचीजी एक बड़ा केक लेकर आयीं। इस कारण सबका मन एलिस की बातें सुनना छोड़ केक की ओर चला गया।

नर्सिंग होम के केबिन में एक सह-परिचारिका एलिस को खिलाने की चेष्टा कर रही थी – "मेरी सोना बेटी ! इस दलिया को खा लो तो !" एलिस को आज सबेरे तक ग्लूकोज सलाइन चढ़ाया जा रहा है। परसों ऑपरेशन के पूर्व और बाद में घर का कोई-न-कोई उसके साथ था। उमा प्राय: हमेशा ही साथ में थी। अभी कुछ देर के लिये घर गयी है, फिर आ जायेगी। एलिस के सिरहाने लगे यंत्र में दिख रहा है कि उसके हृदय की धड़कन कितनी है, रक्तचाप बढ़ रहा है या नहीं, मस्तिष्क में कोई तनाव है या नहीं, और भी न जाने क्या-क्या। एलिस छोटी-सी पुस्तक हाथ में लेकर लेटी हुई है। चेहरे पर प्रशान्ति झलक रही है। इतने में सूचना पाकर बाल्टीमोर से उमा की माँ भी आ गयीं। एलिस के तकिये के नीचे श्रीमाँ का लाकेट रखा हुआ है। हाथ में ली हुई पुस्तक के उसी चित्र को वह बड़े ध्यान से देख रही है, जिसमें निवेदिता और 'माँ' आमने-सामने बैठी हुई हैं, जो चित्र उसे पुरानी वस्तुओं के बीच मिला था।

उमा की माँ ने पूछा – "बेटी ! तेरे मन में इतनी शक्ति कहाँ से आयी?" एलिस ने चुपचाप वह चित्र घुमाकर दिखा दिया। जब वह उस चित्र को मँढ़वाने के लिए पैदल अपने घर के पास की एक दुकान में जा रही थी, तभी उसने एक मकान के सामने एक एम्बुलेंस खड़ा देखा। एलिस कहने लगी – "उस समय मेरे अन्दर 'माँ' जाग्रत हो गयीं। मैं अयाचित भाव से दरवाजे के पास खड़ी थी। जब मेरी ही उम्र की एक लड़की को स्ट्रेचर पर से गाड़ी में चढ़ा रहे थे, तब सहसा मेरे मन में न जाने क्या हुआ, मैं दौड़कर गयी और उससे पूछा – 'मैं तुम्हारे लिये क्या कर सकती हूँ?' उसकी दोनों आँखें चमक उठीं। वह बोली – 'क्या तुम मुझे अपनी एक किडनी दे सकोगी? मेरी दोनों किडनियाँ खराब हो गयी हैं। दो बार ऑपरेशन के बाद ठीक नहीं हुआ। तीसरी बार ऑपरेशन के लिये जा रही हूँ। डॉक्टर के अनुसार यह ऑपरेशन केवल सांत्वना के लिये है।' मैंने कहा – 'अवश्य, मैं तुम्हें अपनी एक किडनी दे सकती हूँ। मैं अब वयस्क हूँ। किसी की अनुमति की आवश्यकता भी नहीं है।' घर में जब सबको खबर मिली, उस समय मैं अस्पताल में थी। उसके बाद की सारी घटना तो आप लोग जानते ही हैं। मैं अस्पताल, स्कूल, कॉलेज या कोई बड़ी संस्था तो नहीं बना सकूँगी। मैं जो कुछ भी कर सकती हूँ, वह बहुत सीमित है, तो भी मेरा हृदय इस समय हजारों चन्द्रमाओं के आलोक से उद्भासित है। इसी प्रकाश से सबके अज्ञान का अन्धकार दूर होगा। मैं तो माँ हूँ, सबके दु:ख को दूर करने का उत्तरदायित्व तो मेरा ही है। है न चाचीजी?"

एलिस ने अपनी आँखें बन्द कर ली और उस चित्र को अपनी छाती से जकड़ लिया। उसकी चाची के नेत्रों के दोनों छोर से आँसू की दो बूँदें लुढ़क पड़ीं। ❑❑❑
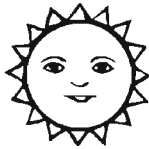
# विज्ञान भी है संस्कृत में

***डॉ. महेशचन्द्र शर्मा, भिलाई***
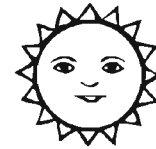
'संस्कृत' शब्द का अर्थ है – शुद्ध, परिष्कृत, अलंकृत, परिमार्जित तथा निर्मल आदि। संस्कारों को ही संस्कृति में और दोनों की महत्ता संस्कृत में देखी जा सकती है। व्याकरण या शब्दानुशासन ही भाषा का संस्कारक है। इन्द्र और चन्द्र के पश्चात् ज्ञान के अधिष्ठाता तथा ऋद्धि-सिद्धि के नाथ गणेश के पिता भगवान महेश्वर के अमोघ वरदान से महर्षि पाणिनि ने संस्कृत-व्याकरण का अनुसन्धान किया। इसे सुर-भारती या देववाणी भी कहा गया। इसे देवभाषा इसलिये कहा गया, क्योंकि इससे मानव-मात्र में दिव्य गुणों का संचार भी हो सकता है और ऐसा हुआ भी है।

पाश्चात्य विद्वान् मुग्धानल (मैग्डॉनल) की ऐसी मान्यता है कि चीन को छोड़कर "शायद विश्व में" भारत जैसा अन्य कोई भी देश नहीं है, जो विगत ३००० से अधिक वर्षों से अपने साहित्य, भाषा, धर्म-मतों, विधियों, सामाजिक रूढ़ियों तथा क्रिया-कलापों की परम्परा को अखण्ड रूप से दिखा सकता हो।" सैकड़ों वर्षों के अथक प्रयास और परिश्रम के बावजूद विद्वान् हमारे वेदों का निश्चित रचना-काल तय नहीं कर सके। पाश्चात्य विद्वान् इतना ही कह सके कि ये कम-से-कम ५००० वर्ष पुराने हैं। ये वेद समग्र धर्म के मूल हैं और ज्ञान-विज्ञान के आदि स्रोत हैं। संस्कृत में वह सब कुछ है, जो दुनिया में है। विश्व में संस्कृत के सिवा कुछ नहीं है। हमारे ऋषियों, मुनियों, मनीषियों, तत्त्वज्ञों तथा कवियों ने संस्कृत को बहुत पूर्व ही लोक-व्यापकता प्रदान कर दी थी। विंटरनिट्ज जैसे पाश्चात्य विद्वान् को कहना पड़ा – "भारतीय साहित्य की विपुलता देखकर बुद्धि दंग रह जाती है। भारतीय साहित्य की विपुल सूचियाँ, भारत-सूचियाँ, भारत तथा यूरोप के अनेक पुस्तकालयों में सर्वत्र लेखकों और ग्रन्थों के नाम गिनाती हैं।" हमारी मातृभाषा और राष्ट्रभाषा हिन्दी की अनिवार्यता तो रहनी ही चाहिये। अँग्रेजी अपने ऐतिहासिक व राजनैतिक कारणों व योजना के तहत इस देश

से शीघ्र विदा होने वाली नहीं। मध्य-मार्ग अपनाते हुए संस्कृत को अनिवार्य तथा वैकल्पिक – दो रूपों में पढ़ाया जा सकता है। अनिवार्य संस्कृत पर विशेष बल दिया जाना चाहिये। ये मत ठीक नहीं है। अपितु सामान्य हिन्दी व अँग्रेजी की भाँति केवल व्याकरण व भाषा की प्राथमिक बातें सिखाने की प्रमुखता होनी चाहिये। वैकल्पिक विषय के रूप में कला, विज्ञान, वाणिज्य तथा कृषि आदि विषयों के साथ इच्छुक छात्रों को साहित्यिक संस्कृत पढ़ने की सुविधा होनी चाहिये। जैसा कि हर पढ़ा-लिखा व्यक्ति समझता है कि आज तुलनात्मक अध्ययन के युग में संस्कृत को अँग्रेजी तथा हिन्दी साहित्य ग्रुप के रूप में पढ़ना-पढ़ाना उपयोगी होगा। संस्कृत के छात्रों को अँग्रेजी तथा हिन्दी से दूर रखकर कूप-मण्डूक या पोंगा पण्डित ही बनाया जा सकेगा। वहीं अन्य भाषाओं का साहित्य चुननेवालों को संस्कृत के महान् साहित्य से वंचित करना अनुचित प्रतीत होता है।

सामान्यत: यह दुष्प्रचारित किया जाता रहा है कि संस्कृत एक पण्डिताऊ भाषा है। बहुत हुआ तो भारी मन से स्वीकार किया जाता है कि हाँ, इसमें साहित्य या धर्म भी है। पर यह मानने के लिये कोई तैयार नहीं होता कि संस्कृत में दर्शन, भूगोल, खगोल, गणित, रसायन, चिकित्सा, कृषि-विज्ञान, अभियांत्रिकी, राजनीति, समाज-विज्ञान तथा युद्ध-विज्ञान भी है। आज अनेक वैदिक पण्डितों तथा नृतत्त्व-विज्ञानी, प्राणि-शस्त्रियों आदि में सृष्टि के विषय में देश-विदेश में परिसंवाद चल रहे हैं। अखिल भारतीय तथा वैश्विक संस्कृत सम्मेलनों में संस्कृत में निहित विज्ञान की अनेक शाखाओं पर शोधपत्र प्रस्तुत कर शास्त्रार्थ किया जा रहा है। जन-सामान्य का ध्यान इस ओर भी आकृष्ट किया जाना चाहिये।

भूगोल व खगोल की दृष्टि से आर्यभट्ट-कृत 'आर्यभट्टीय' एक महत्त्वपूर्ण तथा प्रामाणिक ग्रन्थ है। सूर्य की स्थिरता तथा पृथिवी द्वारा सूर्य की परिक्रमा और दिन-रात होनेवाली बात विश्व को प्रथम बार बतानेवाले वैज्ञानिक को ही सारा-जगत् और विज्ञान आर्यभट्ट के नाम जानते हैं। कोपरनिकस और गैलीलियो के चारणों को जानना चहिये कि इन दोनों का जन्म १४७६ तथा १५६४ ई. में हुआ था, जबकि आर्यभट्ट ४७६ ई. में अवतरित हुए थे। इसी प्रकार भास्कराचार्य के गणित व ज्योतिष का लोहा सारी दुनिया मानती है। फिर ऐसा क्यों कहा जाता है कि संस्कृत में सिर्फ कर्मकाण्ड है? खगोल और भूगोल के छात्रों को यदि वराहमिहिर, भास्कराचार्य तथा आर्यभट्ट को पढ़ाना है, तो संस्कृत से सरोकार रखना होगा। पैथागोरस तथा यूक्लिडियन ने रेखागणित के क्षेत्र में ज्यामिति से सैतालीसवें प्रमेय की स्वयं खोज नहीं की, अपितु इसके लिये उनको बोधायन का ऋण स्वीकार करना चाहिये। उनके वर्णन से ही इन्होंने सीखा है। पश्चिम ने १६वीं सदी के बाद ही त्रिभुज के विषय में जाना, जबकि सूर्य-सिद्धान्त शताब्दियों पूर्व ही इसका वर्णन कर चुका है। आर्यभट्ट ने ईसा की पाँचवीं शताब्दी में ही दशमलव की खोज करके पश्चिम और पूरी दुनिया को भेंट कर दिया। बीजगणित को सरलता से समझने में भास्कराचार्य कोई सानी नहीं रखते। वे लिखते हैं – **खयोगे वियोगे धनर्णं तथैव च्युत्तमम्। शून्यस्तद्विर्प्यासमेति।।** अर्थात् "शून्य में कुछ जोड़ने या किसी राशि में से शून्य को घटाये, तो कोई अन्तर नहीं पड़ेगा, किन्तु शून्य से धनराशि घटाने पर ऋण और ऋण घटाने पर धनराशि प्राप्त होती है।"

गणित के समान ही ज्योतिष में भी संस्कृत विद्या सदा अग्रगामी रही है – सूर्य-ग्रहण, चन्द्र-ग्रहण, सूर्योदय-काल, चन्द्रोदय-काल तथा नाना प्रकार के मुहूर्तों के विषय में भारतीय गणित-ज्योतिषियों द्वारा आज भी पंचांग में जो छापा जाता है, वह पूर्णत: सत्य सिद्ध होता रहा है। आकर्षण के गुरुत्व-सिद्धान्त की चर्चा करते हुए भास्कराचार्य ने लिखा है – "पृथिवी आकर्षण शक्ति से युक्त है। यह आकाश की सारी वस्तुओं को इसी शक्ति से अपनी ओर आकर्षित करती है। सब ओर से समान आकाश में वह भला कैसे गिर सकती है?" दुर्भाग्यवश विदेशी शासन तथा प्रचार-तंत्र के पक्षपात के कारण अब तक अपने इस स्वदेशी 'आकर्षण-शक्ति सिद्धान्त' का प्रचार नहीं हो सका। शायद इसीलिये ६०० वर्ष बाद न्यूटन को इस सन्दर्भ में मान्यता मिली। वैशेषिक आचार्य प्रशस्तपाद के सापेक्षिकता सिद्धान्त की बात भी संस्कृत में है, जिसे हमने भुला दिया है।

वेदों में अश्विनीकुमार नेत्र-चिकित्सक के रूप में प्रसिद्ध हैं। वे अस्थिरोग-विशेषज्ञ के रूप में भी प्रसिद्ध हैं। वरुण तथा रुद्र भी चिकित्सक देव माने गये हैं। चिकित्सक सौन्दर्य -विशेषज्ञ भी हुआ करते थे। 'रजनी' प्रयोग से जहाँ कुष्ठ-रोग का निदान होता था, वहीं 'नितत्नी' के प्रयोग से केश लम्बे, घने और काले किये जाते रहे। चरक, वाणभट्ट और भावमित्र को कौन नहीं जानता? अरबी में चरक 'सिरक' नाम से अनूदित हुये और संस्कृत चिकित्सा लातीनी भाषाओं तक पहुँच गयी। शल्य-चिकित्सक सुश्रुत से भी बढ़कर बौद्ध-कालीन वैद्य जीवक की ख्याति सफल मस्तिष्क ऑपरेशन-कर्त्ता के रूप में है। कुल मिलाकर यह समझ लेना चाहिये कि भारत की दुर्दशा वर्तमान की उपेक्षा से ही नहीं, अपितु अपने अतीत की अवहेलना से भी हुई है। ज्ञान-गंगा को फिर से समृद्ध कर उसमें अवगाहन ही इस रोग की दवा है। ❑

# खेतड़ी-निवास : कुछ घटनाएँ (२)

*स्वामी विदेहात्मानन्द*

(१८९३ ई. में अमेरिका के शिकागो नगर में आयोजित सर्व-धर्म-महासभा में पहुँचकर अपना ऐतिहासिक व्याख्यान देने के पूर्व स्वामी विवेकानन्द ने एक अकिंचन परिव्राजक के रूप में उत्तरी-पश्चिमी भारत का व्यापक भ्रमण किया था। इस लेखमाला में प्रस्तुत है – विविध स्रोतों से संकलित तथा कुछ नवीन तथ्यों से संबलित उनके राजस्थान-भ्रमण तथा वहाँ के लोगों से मेल-जोल का रोचक विवरण। – सं.)

## राजा अजीतसिंह का परिवार

चूँकि स्वामीजी का राजा साहब के साथ जीवन भर के लिये काफी अन्तरंग सम्बन्ध जुड़ गया था और स्वामीजी ने माउंट आबू तथा खेतड़ी में तीन बार राजा साहब के साथ कुल लगभग छह महीने निवास किया था, अत: उनके परिवार के लोग भी स्वामीजी के सम्पर्क में आये थे, जैसा कि आगे दिये गये तथ्यों से ज्ञात होता है, अत: राजा साहब के परिवार का यत्किंचित् परिचय देना समीचीन होगा। इस विषय में अधिकांश तथ्यों का संकलन पं. झाबरमल्ल शर्मा की 'आदर्श नरेश' ग्रन्थ से हुआ है।

यद्यपि तत्कालीन राजाओं में बहुविवाह की प्रथा थी, परन्तु राजा अजीतसिंह ने मात्र एक ही विवाह किया था। उनका विवाह संवत् १९३२ (१८७५ ई.) में ठाकुर देवीसिंहजी चांपावत की पुत्री के साथ हुआ था, इस कारण वे महारानी चांपावतजी कहलाती थीं। उनसे उनकी कुल तीन सन्तानें हुईं – दो पुत्रियाँ और बाद में एक पुत्र। पुत्रियों के नाम थे सूर्यकुमारी और चन्द्रकुमारी। पुत्र जयसिंह का जन्म बाद में हुआ।

## महारानी चांपावतजी

महारानी चांपावतजी एक पतिव्रता, उदारहृदया, स्वधर्म-परायणा तेजस्विनी महिला थीं। विवाह के उपरान्त राजा साहब के ही समान उन्होंने भी विद्याभ्यास कर लिया था। वे हिन्दी के अलावा थोड़ी संस्कृत, अंग्रेजी तथा उर्दू भी जानती थीं। उन्होंने ड्राइंग-पेंटिंग, सीना तथा बुनना आदि कलाओं में कुशलता हासिल की थी। अपने नीजी पुस्तकालय में उन्होंने दो हजार से अधिक उत्तमोत्तम पुस्तकें मँगाकर एकत्र की थीं। ... उन्हें डाक्टरी का भी अच्छा अनुभव हो गया था। वे साधारण बीमारियों को पहचान कर एलोपैथिक दवा – मिक्शचर आदि ठीक तौल-मात्रा से बनाकर दे देती थीं। ... अपने धर्म में उनकी पूरी श्रद्धा थी। प्राचीन मर्यादा का पालन करने में वे इतनी दृढ़ थीं कि खेतड़ी के बाहर प्रवास में भी वे पर्दे की पाबन्दी बड़ी कड़ाई के साथ पालन करती थीं। उनका देहावसान १६ मई, १९०४ ई. को हुआ।

स्वामीजी जब १८९१ ई. में खेतड़ी में आये, उस समय राजा साहब की बड़ी पुत्री सूर्यकुमारी ९ साल की और छोटी ३ साल की थी; पुत्र जयसिंह का जन्म ही नहीं हुआ था।

## ज्येष्ठ कन्या सूर्यकुमारी (१८८२-१९१३)

राजा अजीतसिंह की ज्येष्ठ पुत्री – सूर्यकुमारी का जन्म १८८२ ई. (संवत् १९३९) में, विवाह १८९४ ई. (सं. १९५१) में, तथा देहान्त १९१३ ई. (सं. १९७०) में हुआ। स्वामीजी १८९१, १८९३ और १८९७ में – तीन बार खेतड़ी गये थे। राजा की बड़ी पुत्री सूर्यकुमारी ने सम्भवत: तीनों बार ही स्वामीजी का दर्शन किया था, उस समय उसकी आयु क्रमश: ९, ११ तथा १५ वर्ष की थी। राजकुमारी की आजीवन स्वामीजी पर असीम भक्ति थी। पण्डित झाबरमल्ल शर्मा उनके विषय में लिखते हैं – "श्रीमती सूर्यकुमारीजी का जीवन धर्म-भाव-युक्त दया, उदारता और परोपकारमय था। हिन्दी के प्रति श्रीमती का कितना अनुराग था, यह जानने के लिये उनका हिन्दी पुस्तकों का संग्रह ही पर्याप्त है, जो शाहपुरा के राजमहल में सुरक्षित है। वे हिन्दी लिखती भी सुन्दर थीं। उनके बनाये हुए बहु रंगरंजित चित्र (आयल पेंटिंग्स) और दस्तकारी की चीजें उनकी कुशलता का परिचय दे रही हैं। पितृगृह में स्वामी विवेकानन्दजी के उपदेशों को सुनने और पीछे उनके व्याख्यानों तथा लेखों को पढ़ने के बाद श्रीमती सूर्यकुमारीजी की भक्ति अद्वैत वेदान्त पर जम गयी थी। ... कई वर्ष हुए श्रीमती सूर्यकुमारीजी के स्मारक में राजाधिराज श्री उम्मेदसिंहजी साहब ने एक लाख रुपये उत्सर्ग किये थे। उन रुपयों के ब्याज की आमदनी में से १७ हजार रुपये 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' को प्रदान कर आपने 'सूर्यकुमारी पुस्तकमाला' के प्रकाशन की व्यवस्था करायी। इस व्यवस्था के अनुसार 'सूर्यकुमारी पुस्तकमाला' में कई एक उत्तमोत्तम पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं और हो रही हैं।"[१]

हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक तथा कथाकार श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने इस ग्रन्थमाला के सम्पादन का भार स्वयं ही

१. आदर्श नरेश, पृ. २९०-९२

बड़े उत्साह के साथ ग्रहण किया। स्वामी विवेकानन्द जी का 'ज्ञानयोग' ग्रन्थ श्री जगन्मोहन वर्मा द्वारा अंग्रेजी से हिन्दी में अनुवादित होकर 'नागरी प्रचारिणी सभा' से 'विवेकानन्द-ग्रन्थावली' के प्रथम दो खण्डों के रूप में क्रमश: १९२१ तथा १९२३ ई. में प्रकाशित हुआ। ग्रन्थमाला की भूमिका में गुलेरीजी स्वयं लिखते हैं – "श्रीमती सूर्यकुमारीजी बहुत शिक्षिता थीं। उनका अध्ययन बहुत विस्तृत था। उनका हिन्दी पुस्तकालय परिपूर्ण था। हिन्दी इतनी अच्छी लिखती थीं और अक्षर इतने सुन्दर होते थे कि देखनेवाला चमत्कृत रह जाय। स्वर्गवास के कुछ समय पूर्व श्रीमती ने कहा था कि स्वामी विवेकानन्दजी के सब ग्रन्थों, व्याख्यानों और लेखों का प्रामाणिक हिन्दी अनुवाद मैं छपवाऊँगी। बाल्यकाल से ही स्वामीजी के लेखों और अध्यात्म, विशेषत: अद्वैत वेदान्त की ओर श्रीमती की रुचि थी। श्रीमती के निर्देशानुसार इसका कार्यक्रम बाँधा गया। साथ ही श्रीमती ने यह इच्छा प्रकट की कि इस सम्बन्ध में हिन्दी में उत्तमोत्तम ग्रन्थों के प्रकाशन के लिये एक अक्षय निधि की व्यवस्था का भी सूत्रपात हो जाय। इसका व्यवस्था-पत्र बनते ही श्रीमती का स्वर्गवास हो गया। राजकुमार श्री उम्मेदसिंहजी ने श्रीमती की अन्तिम इच्छा के अनुसार लगभग एक लाख रुपया श्रीमती के इसी संकल्प की पूर्ति के लिये विनियोग किया। 'काशी-नागरी-प्रचारिणी-सभा' के द्वारा इस ग्रन्थमाला के प्रकाशन की व्यवस्था हुई है। स्वामी विवेकानन्दजी के यावत् निबन्धों के अतिरिक्त और भी उत्तमोत्तम ग्रन्थ इस ग्रन्थमाला में छापे जायेंगे और लागत से कुछ ही अधिक मूल्य पर सर्वसाधारण के लिये सुलभ होंगे।" लगता है कि नागरी प्रचारिणी सभा ने इस एकमात्र ग्रन्थ के प्रकाशन के उपरान्त 'विवेकानन्द-ग्रन्थावली' के प्रकाशन का कार्य आगे नहीं बढ़ाया।

## कनिष्ठ कन्या चन्द्रकुमारी (१८८८)

राजा अजीतसिंहजी की कनिष्ठ पुत्री – चन्द्रकुमारी का जन्म १८८८ ई. और विवाह पिता राजा अजीतसिंह के निधनोपरान्त १९०२ ई. में देवलिया – प्रतापगढ़ के राजकुमार मानसिंहजी के साथ हुआ। ये भी परम विदुषी, दयावती तथा स्वधर्मपरायण थीं। इनकी बड़ी उत्कट इच्छा थी कि उनके पिता राजा अजीतसिंह की जीवनी लिखी जाय। इसी निमित्त गुलेरीजी ने श्री झाबरमल्लजी को पत्र लिखकर उन्हें इस कार्य में प्रेरित किया। चन्द्रकुमारीजी ने ही उन्हें उक्त ग्रन्थ के लिये उपादान भी उपलब्ध कराये।[२]

## महाराजा की पुत्र-कामना

महाराजा जिस समय स्वामीजी के घनिष्ठ सम्पर्क में आये, उस समय तक उनकी दो पुत्रियाँ हो चुकी थीं, परन्तु कोई उत्तराधिकारी पुत्र नहीं था। वे स्वयं भी दत्तक के रूप में आये थे और उनके पिता राजा फतेहसिंह भी दत्तक के रूप में ही आये थे। उन्हें बड़ी चिन्ता थी कि उनके वंश का सूत्र कैसे आगे चलेगा। उनका विश्वास था कि गुरुदेव के आशीर्वाद से पुत्र अवश्य होगा। एक दिन वे स्वामीजी के पाँव दबाते हुए उनके समक्ष अपनी मनोवेदना व्यक्त करते हुए बोल उठे – "महाराज, आप आशीर्वाद दें कि मुझे एक पुत्र हो। मेरा पक्का विश्वास है कि आपके श्रीमुख से 'तथास्तु' का उच्चारण मात्र होने से ही मेरा अभीष्ट पूर्ण हो जायेगा।" राजा का हार्दिक अनुरोध सुनकर स्वामीजी थोड़े चिन्तित हुए, परन्तु उनका अटूट विश्वास देखकर द्रवित हो गये। उनकी कातर प्रार्थना की उपेक्षा करने में असमर्थ होकर वे बोले, "ठीक है, भगवान श्रीरामकृष्ण देव की कृपा से आपकी मनोकामना पूर्ण होगी।" आगे चलकर हम देखेंगे कि करीब डेढ़ वर्ष बाद स्वामीजी का यह आशीर्वाद अक्षरश: फलीभूत हुआ था।

## स्वामीजी की पठन-शैली

स्वामीजी जब कोई पुस्तक पढ़ते, तो वे पुस्तक की ओर देखते हुए तेजी से पन्ने पलटते जाते। यह देखकर एक दिन महाराजा ने पूछा, "स्वामीजी, इतनी जल्दी आप कैसे पढ़ लेते हैं?" स्वामीजी ने बताया, "कोई बालक जब नया-नया पढ़ना आरम्भ करता है, तो वह एक एक अक्षर का दो-तीन बार उच्चारण करने के बाद ही पूरे शब्द का उच्चारण करता है। उस समय उसका ध्यान प्रत्येक अक्षर पर रहता है, परन्तु जब उसका अभ्यास बढ़ जाता है, तब उसकी दृष्टि अक्षर पर नहीं, बल्कि एक-एक शब्द पर पड़ती है। और वह अक्षरों पर ध्यान दिये बिना ही सीधे शब्दों का बोध करता है। जब उसका अभ्यास और भी बढ़ जाता है, तो उसकी निगाह सीधे एक-एक वाक्य पर पड़ती है और उनके अर्थ का बोध होता जाता है। इसी अभ्यास में और भी वृद्धि हो जाने पर एक-एक पृष्ठ का ज्ञान होने लगता है। यह केवल मन:संयम तथा अभ्यास का फल है। आप प्रयास कीजिए तो आपको भी ऐसा ही होगा।"

## संस्कृत व्याकरण पढ़ना

खेतड़ी में निवास के दौरान ही स्वामीजी का परिचय वहाँ राजपण्डित नारायणदास शास्त्रीजी (१८४५-१९२४) से हुआ। पण्डितजी का जन्म १८४५ ई. में अलवर राज्य के 'गाजी का थाना' नामक स्थान में हुआ था। उन्होंने काशी में जाकर पं. गोविन्द शास्त्री तथा महामहोपाध्याय पं. शिवकुमार शास्त्री से व्याकरण की शिक्षा पायी थी। वे इस विषय पर अपने काल के महानतम विद्वानों में एक थे। १८८३ ई. से वे खेतड़ी की राजकीय संस्कृत पाठशाला में शिक्षक थे। उन्हें अष्टाध्यायी और सिद्धान्त-कौमुदी कण्ठाग्र थी।[३] स्वामीजी ने

२. राजस्थान और नेहरू परिवार, सं. १९८१, पृ. ६६

३. आदर्श नरेश, पं. झाबरमल्ल शर्मा, सं. १९४०, पृ. ६९

जयपुर में भी कुछ दिनों तक संस्कृत व्याकरण का अध्ययन किया था, खेतड़ी में सुयोग देखकर उन्होंने अपना अध्ययन-क्रम पुन: आरम्भ किया। स्वामीजी उनसे पतंजलि-रचित महाभाष्य का अध्ययन करने लगे। पहले दिन पढ़ाने के बाद ही पण्डितजी बोल उठे, "स्वामीजी, आपके समान विद्यार्थी मिलना कठिन है। यदि मैं आपको स्वयं न देख लेता तो शायद मुझे यह विश्वास न होता कि आप जैसी प्रतिभा मनुष्य में सम्भव है।" एक दिन पण्डितजी ने थोड़ा अधिक ही पढ़ा दिया। अगले दिन उसी विषय से सम्बन्धित प्रश्न करने पर स्वामीजी ने पूरे-के-पूरे पाठ की ही आवृत्ति करके उन्हें सुना दिया और उसके साथ ही अपना मत भी जोड़कर बता दिया। पण्डितजी विस्मित होकर उन्हें और भी अधिक मात्रा में पढ़ाने लगे। थोड़े दिनों बाद स्वामीजी जो प्रश्न उठाते पण्डितजी उनके उत्तर न दे पाते, अत: कुछ दिनों बाद स्वामीजी को लगा कि वे पण्डितजी से कुछ विशेष नहीं सीख पा रहे हैं और उन्होंने भी जब देखा कि स्वामीजी स्वयं ही प्रश्न उठाकर स्वयं उनकी मीमांसा कर ले रहे हैं, तो वे बोले, "स्वामीजी, अब आपको सिखाने लायक कुछ बाकी नहीं बचा है। मैं जो कुछ जानता था, वह सब आपको सिखा दिया है और आपने भी उसे आत्मसात् कर लिया है।" स्वामीजी ने पण्डितजी को सादर नमस्कार किया और कृपापूर्वक शिक्षा देने के लिए उनके प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट की। खेतड़ी के संस्कृत कॉलेज में अब भी वह कमरा विद्यमान है, जिसमें जाकर स्वामीजी पं. नारायणदासजी से व्याकरण पढ़ा करते थे।

स्वामी अखण्डानन्दजी ने इस घटना के बारे में कहा था – "स्वामीजी जैसे विद्वान्! तो भी उन्होंने खेतड़ी में नारायणदास से पाणिनी पढ़ना आरम्भ किया। खेतड़ी में उनसे (स्वामीजी) बढ़कर सम्माननीय कौन था! राजा के गुरु होने के कारण भी और अपनी त्याग-तपस्या तथा विद्वत्ता के कारण भी। उन्होंने मुझसे कहा था – 'नारायणदास से एक छात्र के समान पढ़ना आरम्भ किया था।' "[४]

स्वामीजी ने आजीवन पण्डितजी के प्रति श्रद्धा-प्रीति का भाव पोषित किया था। बाद में १३ नवम्बर, १८९५ ई. को लन्दन से स्वामी अखण्डानन्दजी के नाम अपने पत्र में उन्होंने लिखा था – "पण्डित नारायणदासजी को मेरा प्रेमालिंगन बता देना। वे बड़े ही उद्यमी हैं, समय आने पर विशेष कार्यक्षम सिद्ध होंगे।"

## पण्डितों का तर्क

अखण्डानन्दजी ने खेतड़ी में हुई एक अन्य घटना का भी उल्लेख किया है – "हम लोगों के स्वामीजी की तुलना नहीं हो सकती। वे 'अक्रोध-परमानन्द' थे। राजपुताना गया था, वहाँ नाई मेरा मुण्डन कर रहा था और कह रहा था – 'महाराज, आप लोगों के स्वामीजी की कोई तुलना नहीं है। हम तो अपढ़ हैं, उनकी विद्वत्ता को भला क्या समझेंगे? पर ऐसा धैर्य और क्रोध-संवरण करने की क्षमता अन्य किसी में देखने में नहीं आया। देखा – पण्डित लोग उन्हें तर्क में पराजित करने आये हैं, उनके प्रति अपमानसूचक बातें कह रहे हैं, और वे हँसते-मुस्कुराते हुए उन्हें उत्तर देते जा रहे हैं। आखिरकार जो लोग उन्हें नीचा दिखाने का प्रयास कर रहे थे, वे ही उनके अनुगत हो गये।' "[५]

## अनुरागी पण्डित शंकरलाल शर्मा

पण्डित शंकरलाल भी खेतड़ी में स्वामीजी के अनुरागी भक्तों में एक थे। स्वामीजी ने अनेक बार उनके घर जाकर उनकी भिक्षा-ग्रहण की थी। बाद में उन्होंने स्वामीजी के साथ पत्र-व्यवहार भी किया था। एक वर्ष से भी अधिक काल बाद स्वामीजी ने मुम्बई से एक पत्र लिखा था, जिसकी चर्चा बाद में आयेगी। यहाँ पर उनका थोड़ा-सा परिचय मात्र दिया जा रहा है – पण्डित शंकरलाल का जन्म १८६४ ई. में मेरठ में हुआ था। उन्होंने इलाहाबाद के म्योर सेंट्रल कॉलेज में शिक्षा प्राप्त की थी। १८८८ ई. में उनकी खेतड़ी-नरेश अजीतसिंहजी के साथ जयपुर में भेंट हुई। राजा साहब पहले से ही एक आधुनिक शिक्षा-प्राप्त किसी योग्य विद्वान् की तलाश में थे। इन्हें हर तरह से उपयुक्त समझकर १८८९ ई. में खेतड़ी स्कूल का कार्यभार सौंप दिया। स्कूल में पहले से ही अनेक विद्वान् थे, पढ़ाई का कोई नियमित क्रम न था। राजाजी के निर्देशानुसार शंकरलालजी ने बड़ी तत्परता के साथ राज्य की शिक्षा-प्रणाली को व्यवस्थित किया। राजकीय पाठशाला के दो विभाग किये गये – खेतड़ी हाईस्कूल और संस्कृत पाठशाला। हाईस्कूल की पढ़ाई प्रयाग विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम के अनुसार होने लगी। और संस्कृत पाठशाला में भी काशी की प्रथमा और मध्यमा की परिक्षाओं के लिये विद्यार्थी भेजे जाने लगे। बाद में शंकरलाल जी को खेतड़ी-शिक्षा-विभाग का सुपरिंटेंडेंट बना दिया गया। इसके बाद उन्होंने पूरे राज्य में हिन्दी तथा अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा देने के उद्देश्य से कई मिडिल स्कूल और प्रारम्भिक हिन्दी शिक्षा देने हेतु अनेक पाठशालाएँ स्थापित कीं। सभी विद्यालयों में नि:शुल्क शिक्षा की व्यवस्था थी और उनके नियमित रूप से निरीक्षण के लिये एक स्कूल-इंस्पेक्टर की भी नियुक्ति की गयी। छात्रों को स्वस्थ रखने हेतु उनके व्यायाम तथा खेल-कूद की व्यवस्था भी की गयी थी। आगे चलकर स्वामीजी के गुरुभाई अखण्डानन्द जी ने भी खेतड़ी पधारकर शिक्षा-कार्य में योगदान किया। राजाजी द्वारा स्थापित खेतड़ी हाईस्कूल शेखावाटी में ही नहीं, जयपुर-मण्डल भर में पहला है।

४. अखण्डानन्दजीर कथा (बंगला), उद्बोधन, बैशाख १३८७, वर्ष ८२, अंक ४, अप्रैल १९८०, पृ. ७; ५. वही, पृ. ७

### खेतड़ी की आम जनता के बीच

उपरोक्त बातों से कोई यह न सोच ले कि स्वामीजी सारे समय राजा के महल में या विद्वानों के साथ ही बिताया करते थे। वे प्राय: ही वहाँ के निर्धन भक्तों के घर में भी जाकर दर्शन देते। उनके लिये राजा-प्रजा सभी समान स्नेह के पात्र थे। सम्पूर्ण खेतड़ी नगर के लोग उनके गुणों पर मुग्ध थे और वे महाराजा को जैसी स्नेह की दृष्टि से देखते, उसी दृष्टि से वहाँ की दीनतम प्रजा को भी देखते। वे उन लोगों के साथ यथा अवसर कई बार धर्मचर्चा करते और विषय को सरल, सरस तथा स्पष्ट करने के लिये बीच-बीच में अपने गुरुदेव भगवान श्रीरामकृष्ण देव के जीवन की घटनाओं तथा उपदेशों का उल्लेख भी करते। उन लोगों को परमहंसदेव का दर्शन करने का सौभाग्य तो नहीं मिला था, परन्तु स्वामीजी की दैनन्दिन जीवन में पवित्रता तथा मधुरता में उन्हें परमहंसदेव के ही जीवन की झलक दिख जाती।

### चमार की हृदयवत्ता

खेतड़ी में रहते समय लगता है स्वामीजी बीच-बीच में एकान्तवास तथा तपस्या के लिए कहीं आसपास निकल जाते थे और कई दिनों के बाद ही लौटते थे। यही कारण है कि वहाँ के वाकयात रजिस्टर में प्रतिदिन स्वामीजी का उल्लेख नहीं मिलता। खेतड़ी या उसके आसपास कहीं घटी एक घटना स्वामीजी ने गिरीशचन्द्र घोष को बताई थी –

''मैं एक जगह बैठा था। वहाँ दल-के-दल लोग मुझसे उपदेश लेने के लिए आ रहे थे। तीन दिनों तक निरन्तर लोक-समागम होता रहा। सत्संग करने के बाद सभी लोग उठकर चले जाते, परन्तु मेरा भोजन हुआ है या नहीं – यह कोई एक बार भी नहीं पूछता। तीसरी रात, जब सभी लोग चले गये, तो एक दीन-हीन व्यक्ति ने आकर पूछा, 'महाराज, आप तीन दिनों से लगातार बातें कर रहे हैं, परन्तु आपने जलपान तक नहीं किया, इससे मुझे बड़ी पीड़ा हो रही है।' मैंने सोचा – नारायण स्वयं ही दीन के वेश में मेरे समक्ष उपस्थित हुए हैं। मैंने उससे पूछा – 'तुम मुझे कुछ खाने को दोगे?' वह व्यक्ति अत्यन्त कातर-भाव से बोला, 'मेरा हृदय तो चाहता है, पर अपने हाथ की बनायी हुई रोटी मैं आपको कैसे दूँ? यदि कहें तो मैं आटा-दाल ला दूँ और आप दाल-रोटी बना लीजिए। उन दिनों मैं संन्यास के नियमानुसार अग्नि का स्पर्श नहीं करता था। मैं उससे बोला, 'अपनी बनाई हुई रोटी मुझे दो, मैं वही खाऊँगा।' यह सुनकर वह व्यक्ति भय से अभिभूत हो गया। वह खेतड़ी के राजा की प्रजा था, राजा को यदि पता चले कि चमार होकर भी उसने अपनी बनाई हुई रोटी संन्यासी को दी है, तो राजा उसे बड़ा कठोर दण्ड प्रदान करेंगे और उसे देश से भी बाहर निकाल देंगे। मैंने कहा, 'डरने की कोई बात नहीं, राजा तुम्हें दण्डित नहीं करेंगे।' इस बात पर उसे पूरा विश्वास तो नहीं हुआ, परन्तु दया की प्रबलता के कारण, भावी अनिष्ट की उपेक्षा करके भी वह खाने की चीजें ले आया।'' स्वामीजी कहते हैं – ''उस समय यदि देवराज इन्द्र स्वर्णपात्र में अमृत लाकर देते, तो भी वह उतना तृप्तिकर होता या नहीं – इसमें सन्देह है।''

''स्वामीजी के नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। उस व्यक्ति की दया देखकर स्वामीजी ने उस दिन मन-ही-मन सोचा –'उच्च भावों से सम्पन्न ऐसे लाखों लोग झोपड़ियों में निवास करते हैं और हम लोग हीन कहकर उनसे घृणा करते हैं।' इसी घटना के कारण स्वामी विवेकानन्द के हृदय में निम्न जातियों के प्रति असीम सहानुभूति विशेष रूप से उद्दीपित हुई। वे कहा करते थे कि उन्हें निरभिमान करने के लिए ही वह शिक्षाप्रद घटना घटित हुई थी। ...

''चमार को भय हुआ कि खेतड़ी के राजा को यदि पता चला कि उसने स्वामीजी को भोजन दिया है, तो उसका सर्वनाश हो जायेगा। चमार के उस भय की बात जानकर भी स्वामीजी ने खेतड़ी के राजा को सारी बातें विस्तारपूर्वक बता दी। इसके फलस्वरूप कुछ दिनों के बाद ही खेतड़ी के राजा की ओर से चमार के लिए बुलावा आ गया। चमार काँपते हुए राजा के समक्ष आ पहुँचा। पर राजा की कृपा पाकर अब चमार को आगे से कभी पहले का काम नहीं करना पड़ा। इस घटना से प्रमाणित होता है कि दान निष्फल नहीं जाता। चमार का दान निष्काम था, परन्तु यह घटना इस बात का एक उज्ज्वल दृष्टान्त है कि कामनापूर्वक ईश्वर के निमित्त दान करने से भी एक का सौ गुना प्राप्त होता है।''[६]

प्रमथनाथ बसु लिखित बँगला जीवनी ('स्वामी विवेकानन्द प्रथम भाग, पंचम सं., १९९४, पृ. २६९-७०) के आधार पर 'युगनायक विवेकानन्द' (खण्ड १, प्र. सं., पृ. २८९) ग्रन्थ में गिरीशचन्द्र घोष द्वारा वर्णित इस घटना को राजस्थान के किसी रेलवे स्टेशन पर ट्रेन की प्रतीक्षा करते समय घटित बताया गया है और यह भी कहा गया है कि वहाँ उपस्थित कुछ उच्च जाति के लोगों ने इसका विरोध भी किया। स्वामीजी ने उन लोगों को फटकारते हुए चमार की सहृदयता का बखान किया। फिर पाद-टिप्पणी में खेतड़ी में रेलवे स्टेशन न होने के कारण खेतड़ी के आस-पास उसके होने की असम्भवता बताते हुए उसे कहीं अन्यत्र हुआ बताया गया है। परन्तु गिरीश-ग्रन्थावली में कहीं भी इस घटना के रेल्वे स्टेशन पर होने का उल्लेख नहीं है। अस्तु।

---

५. विवेकानन्देर साधन-फल, वाराणसी के 'रामकृष्ण अद्वैताश्रम' में विवेकानन्द-जन्मोत्सव के उपलक्ष्य में २९ जनवरी, १९१० ई. को पठित तथा 'उद्बोधन' पत्रिका के १३वें वर्ष, बैशाख अंक में प्रकाशित और साहित्य संसद, कोलकाता द्वारा प्रकाशित गिरीश-ग्रन्थावली के ५म खण्ड, पृ. २८२-८४ पर मुद्रित

❖ (क्रमश:) ❖

# मेरी स्मृतियों में विवेकानन्द (११)
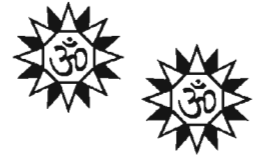
***भगिनी क्रिस्टिन***

(जो लोग महापुरुषों के काल में जन्म लेते हैं और उनके घनिष्ठ सम्पर्क में आते हैं, वे धन्य और कृतकृत्य हो जाते हैं। भगिनी क्रिस्टिन भी एक ऐसी ही अमेरिकन महिला थीं। स्वामीजी-विषयक उनकी अविस्मरणीय स्मृतियाँ आंग्ल मासिक 'प्रबुद्ध-भारत' के १९३१ के जनवरी से दिसम्बर तक, फिर १९४५ के स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक तथा १९७८ के मार्च अंकों में प्रकाशित हुई थीं। बाद में वे 'Reminiscences of Swami Vivekananda' ग्रन्थ में संकलित हुई, वहीं से इनका हिन्दी अनुवाद किया है स्वामी विदेहात्मानन्द ने । – सं.)

आज भारत एक संक्रमण के दौर से गुजर रहा है – पुराने रीति-रिवाजों के स्थान पर नये और आधुनिक तौर-तरीके प्रचलित होते जा रहे हैं। हम इसकी चाहे जितनी भी निन्दा करें, पुराने को चाहे जितना भी पकड़े रहने की चेष्टा करें, बदलाव का चाहे जितना भी विरोध करें, परन्तु हम इस परिवर्तन को रोक नहीं सकते। यह हम पर हावी हो चुका है। अब प्रश्न इतना ही है कि हम इसके साथ समायोजन कैसे करें? क्या हम इसे आँखें मूँदकर स्वयं पर अधिकार कर लेने दें, या फिर निर्भयता और साहस के साथ इससे मिलकर भविष्य की जरूरतों के अनुसार इसके रूपायन में अपनी भूमिका निभाने को प्रस्तुत रहें। कुछ लोगों ने, इससे सामना होने पर, आँखें मूँदकर एक ऐसी विदेशी संस्कृति को अंगीकार कर लिया है, जो अपने जन्म के देश की जरूरतों के लिये तो उपयुक्त थीं, परन्तु अन्यत्र प्रतिरोपित करने की दृष्टि से अनुपयुक्त थीं। प्रत्येक देश को अपनी उन्नति के लिये, अपनी स्वयं की संस्कृति और अपनी स्वयं की संस्थाएँ विकसित करनी होंगी। पूरे विश्व में और विशेषकर एशिया में काफी बदलाव आ रहा है और यदि भारत भी इस परिवर्तन से नहीं बच सकता, तो उसे परिस्थितियों को नियंत्रण में लाना होगा। नवीन को प्राचीन से ही विकसित होना होगा और यह क्रिया स्वाभाविक रूप से तथा विकास के नियमों से सामंजस्य बनाये रखकर ही होनी चाहिये। क्या कमल को गुलाब में बदला जा सकता है? बल्कि हमें ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करनी होंगी, जिसके द्वारा कमल एक अधिक सुन्दर तथा परिपूर्ण कमल बन सके, जो सदा-सर्वदा के लिये इस महान् राष्ट्र का प्रतीक बना रहेगा और जिसकी जड़ें भले ही इस संसार के कीचड़ में होंगी, परन्तु वह एक शुद्ध परिवेश में सिर उठाये पुष्पों का सृजन करता रहेगा।

कुछ दृष्टियों से हमारा जो संक्रमण हो रहा है, वह नारियों को विशेष रूप से प्रभावित करता है। नगरों के विकास के फलस्वरूप गाँवों की सहज-स्वाधीन जीवन बितानेवाली नारियों को वहाँ से निकालकर भीड़भरे नगरों में ईंट की चहारदीवारियों के भीतर आबद्ध कर दिया जाता है। उनमें से अधिकांश उच्च जातियों की निर्धन महिलाएँ होती हैं और उन्हें लगातार महीनों तक उसी दायरे में रहना पड़ता है। आर्थिक दबाव अति प्रबल है। चिन्ता, कुपोषण, शुद्ध वायु तथा व्यायाम का अभाव के फलस्वरूप वे दुख, रोग तथा अकाल मृत्यु की शिकार होती हैं। विवाहित महिलाओं की तुलना में विधवाओं की हालत तो और भी दयनीय है। वर्तमान व्यवस्था में उसके लिये कोई स्थान नहीं है। पुराने ग्राम्य जीवन की सामाजिक व्यवस्था में वह एक महत्त्वपूर्ण अंग और एक सम्माननीय तथा उपयोगी सम्पदा थी। परन्तु अब उस पर गृहकार्य में आबद्ध रहने का खतरा मड़रा रहा है। उसे लगता है कि परिवार से उसे जो आहार तथा आवास की सुविधा मिलती है, उसके बदले में वह घर के एक नौकर का खर्च तो बचा ही सकती है। जब निर्धनता का दबाव बढ़ जाता है, तो सर्वप्रथम उसी को महसूस होता है कि परिवार को ऐसे किसी सहायक की जरूरत नहीं है। ऐसी अवस्था में, जिनकी चमड़ी थोड़ी मोटी है उन्हें अपमान का बोध होता है। परन्तु जो संवेदनशील हैं, उन पर इसका बड़ा गहरा असर होता है। उन्हें लगता है कि वे अपने साथ रहनेवालों के मुखों से रोटियाँ छीन रही हैं। उनका कष्ट महान् है और उनकी असहायता के कारण वह और भी प्रबल हो जाता है। परिवार की आय बढ़ाने में वे कोई भी योगदान नहीं कर सकतीं।

इस श्रेणी की महिलाओं की सहायता करने को स्वामीजी विशेष रूप से इच्छुक थे। वे कहते – "इन्हें आर्थिक दृष्टि से स्वाधीन होना चाहिये।" परन्तु इसे कैसे किया जाय? उन्होंने संकेत दिया कि यह बताना उनका काम नहीं था। जो नारियाँ इस कार्य का बीड़ा उठायेंगीं, उन्हीं को इस समस्या का हल सोचना होगा। इसके बाद वे बोले – "उन्हें शिक्षित किया जाना चाहिये।" इस विषय में उनके विचार अधिक स्पष्ट थे और उन्होंने कुछ सिद्धान्त भी बता दिये थे। शिक्षा पाश्चात्य पद्धतियों के अनुसार नहीं, अपितु भारतीय आदर्श के अनुसार

प्रदान की जायेगी। पढ़ना और लिखना अपने आपमें कोई लक्ष्य नहीं है। शिक्षा ऐसी हो, जिससे कि इन उपलब्धियों का उपयोग भोग-परायणता तथा दिखावे के एक हथियार के रूप में नहीं, अपितु एक भले उद्देश्य तथा सेवा-कार्य में हो सके। यदि कोई महिला केवल भद्दे, कुरुचिपूर्ण तथा सनसनी-खेज कथाएँ पढ़ने में ही अपनी पठन-क्षमता का उपयोग करती है, तो उसे अपढ़ छोड़ देना ही बेहतर होगा। परन्तु यदि यह उसके लिये अपने देश के साहित्य – इतिहास, कला तथा विज्ञान के द्वार को खोलने की चाभी बन जाती है, तो यह एक वरदान सिद्ध होगी। रामायण और महाभारत में निरूपित महान् आदर्शों को कथाओं, आवृत्तियों, नाटकों, तथा प्रवचनों के द्वारा निरन्तर उनके मानस के समक्ष रखना होगा; और तब तक रखना होगा, जब तक कि उनके पात्र इनके लिये सजीव न प्रतीत होने लगें, जब तक कि ये आदर्श उनके अपने व्यक्तित्व के सजीव, प्राणास्पद, सशक्त अंग न बन जायँ। ऐसा करने पर यथासमय एक महान् नारियों की जाति का उदय होगा।

इसके लिये सर्वप्रथम मातृभाषा की भलीभाँति शिक्षा देनी होगी, उसके बाद संस्कृत और तब अंग्रेजी, विज्ञान, इतिहास, गणित, भूगोल की शिक्षा दी जायेगी। और इसके साथ ही उन्हें सिलाई, कढ़ाई, सूत कातना, भोजन पकाना, रोगियों की परिचर्या और किसी भी प्रकार की देशी दस्तकारी सिखानी होगी। विज्ञान सहित हर प्रकार के पाश्चात्य ज्ञान को स्थान देना होगा, तथापि भारतीय परम्पराओं को हमेशा पवित्र मानना होगा। प्राच्य तथा पाश्चात्य के महानतम विचारों को आत्मसात् करके ही शिक्षा सम्पन्न होगी। जो शिक्षा, भारतीय नारी की, उसकी प्राचीन संस्कृति, उसके धर्म तथा परम्पराओं में उसकी श्रद्धा को क्षति पहुँचाती है, न केवल व्यर्थ, अपितु हानिकर भी है। इसकी जगह उसे यथावत् छोड़ देना अच्छा होगा। गणित के अध्ययन के द्वारा, मन को अनुशासित करना होगा और सटीकता तथा सत्य का प्रशिक्षण देना होगा। इतिहास के अध्ययन के द्वारा, कारणों के माध्यम से उसके फलों को ढूँढ़ना होगा, भूतकाल में की गयी भूलों को न दुहराने की चेतावनी ग्रहण करनी होगी। स्वामीजी के लिये नारियों की मुक्ति का अर्थ था – सीमाओं से मुक्त होना और इसी से उनकी वास्तविक शक्ति प्रकट हो सकती है।

पश्चिमी देशों की पुरानी शिक्षा-प्रणालियों में केवल मन, उसके प्रशिक्षण तथा उसके नियमन पर ध्यान दिया गया है। इसके साथ ही इतिहास, साहित्य, विज्ञान, भूगोल तथा भाषाओं सम्बन्धी कुछ बातें जोड़ दी गयी थीं। शिक्षा की यह एक बड़ी संकीर्ण धारणा है। मनुष्य केवल मन ही नहीं है। क्यों न एक नवीन शिक्षा-प्रणाली गढ़ ली जाय, जो मनुष्य के वास्तविक स्वरूप पर आधारित हो? जब जगत् में एक नया आलोक आता है, तो इसे जीवन के सभी पहलुओं को आलोकित करना चाहिये। यदि मनुष्य चिर दिव्य है, तो शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति में पहले से ही निहित ज्ञान का प्रकटीकरण मात्र होना चाहिये। उन्होंने कहा था – "शिक्षा उस पूर्णता की अभिव्यक्ति है, जो व्यक्ति में पहले से ही विद्यमान है।"

वे कहते – चलो, हम लोग एक नया प्रयोग करे। इस महत्त्वपूर्ण सन्धिकाल में इस पूरे विषय पर ही नये सिरे से विचार करने की आवश्यकता है। चलो, हम लोग शिक्षा की कुछ पुरानी प्रथाओं को तिलांजलि दे दें। हम एक विराट् धारणा के अनुसार, बृहत्तर उद्देश्यों को लेकर इसका पुनर्निर्माण करें। भारतीय नारी को न केवल उच्च-शिक्षित होना होगा, अपितु उनमें से कम-से-कम कुछ को असाधारण मेधा-सम्पन्न होना चाहिये, जो दुनिया की किसी भी प्रतिभाशाली महिला की बराबरी कर सकेगी और उनमें आध्यात्मिकता की वही ज्योति जल रही होगी, जिस महान् ज्योति ने वर्तमान काल में पूरे विश्व को आलोकित कर दिया है। उनका जीवन ज्वलन्त होगा। त्याग और सेवा उनके मूलमंत्र होंगे। ऐसी मुट्ठी भर महिलाएँ ही भारतीय नारी की सारी समस्याओं का समाधान कर सकेंगी। पुरा काल में महिलाओं ने व्यक्तिगत उद्देश्यों के लिये परम बलिदान किये। क्या इस काल में कुछ ऐसी महिलाएँ नहीं मिलेंगी, जो महत्तर उद्देश्यों के लिये अपना हृदय-मन तथा शरीर समर्पित कर देंगी? स्वामीजी कहा करते – "मुझे कुछ पवित्र तथा निःस्वार्थ नर-नारियाँ मिल जायँ, तो मैं पूरे जगत् को हिलाकर रख दूँगा!" परन्तु यह कार्य कोई पुरुष नहीं कर सकता। इसे केवल महिलाओं के द्वारा ही सम्पन्न करना होगा। इस विषय में वे बड़ी दृढ़ता के साथ कहते – "क्या मैं एक महिला हूँ, जो महिलाओं की समस्या का समाधान करूँगा? दूर हटो! वे स्वयं ही अपनी समस्याओं का हल करने में सक्षम हैं।" सभी महिलाओं में निहित शक्ति तथा महानता में उनकी असीम श्रद्धा थी और यह भाव उसके साथ मेल खाता था। उनका विश्वास था – "प्रत्येक नारी जगदम्बा की अंश और शक्ति की प्रतिमूर्ति है।" इस शक्ति को जाग्रत करना होगा। यदि नारी की शक्ति का प्राय: भले के स्थान पर बुरे उद्देश्य के लिये ही उपयोग होता है, तो इसका कारण है कि उसे दबाकर रखा गया है, परन्तु जब उसकी जंजीरें खुल जायेंगी तब उसके स्वभाव में निहित सिंह जाग्रत हो उठेगा। वह युग-युग से कष्ट झेलती आयी है। इसके फलस्वरूप उसमें असीम धैर्य तथा अनन्त सहनशीलता आ गयी है।

वैसे धर्मशास्त्र में अब हम यह नहीं सिखाते कि मनुष्य दुर्बलता के फलस्वरूप जन्मा पाप तथा दुख की सन्तान है, बल्कि ईश्वर की एक पवित्र तथा पूर्ण सन्तान है; वैसे ही हम

शिक्षा के क्षेत्र में भी **क्यों न अपने दृष्टिकोण को बदल डालें और सोचें कि प्रत्येक छात्र को आलोक तथा ज्ञान के एक ऐसे पुंज के रूप में देखें, जो आनन्द, स्वाधीनता तथा सौन्दर्य के बीच अपने भाग्य की कोपलें खोल रहा है?** सभी धर्मों ने सिखाया है – "ईश्वर का राज्य तुम्हारे भीतर ही है।"

यह भी स्पष्ट है कि शिक्षा के क्षेत्र में यह प्रयोग, बालकों की जगह बालिकाओं के माध्यम से करना कहीं अधिक आसान होगा। इसका कारण यह है कि महिलाओं को अभी डिग्री के लिये पढ़ने की जरूरत नहीं है, क्योंकि आगामी कुछ काल तक वे किसी डिग्री-आधारित पद के लिये प्रयास नहीं करेंगी। इस क्षेत्र में, स्वीकृत मापदण्डों के अनुसार चलना उन्हें आवश्यक नहीं प्रतीत होता। इसी से एक नयी जाति का, उत्कृष्ट चरित्र के नर-नारियों का और एक नयी प्रणाली का विकास होगा।

और बच्चों के लिये स्कूल? हाँ, उनकी भी आवश्यकता है, क्योंकि हर क्षेत्र में शिक्षा का विस्तार जरूरी है – विधवा-आश्रम, रोगी-परिचर्या, हर प्रकार की सेवा तथा क्रियाशीलता। सभी स्तरों पर नया जीवन, नया बौद्धिक दृष्टिकोण और नयी ऊर्जा लानी होगी। यदि यह प्रयोग विफल रहा, तो भी यह पूरी तौर से व्यर्थ नहीं जायेगा। क्योंकि इससे शक्ति, नेतृत्व, दायित्व-बोध आदि का विकास हो चुका होगा। यदि यह योजना सफल हुई, और निश्चय ही सफल होगी, तो फिर इससे महान् कल्याण होगा। अभी उसके सुफल की कल्पना तक कठिन है। इस प्रणाली से जो नारी उत्पन्न होगी, वह एक असाधारण नारी होगी। इस संक्रमण काल में ऐसी कुछ नारियों की विशेष आवश्यकता है।

हममें से कुछ का विश्वास है कि यदि स्वामी विवेकानन्द की नारी-शिक्षा विषयक विचारों को सच्चे भाव से रूपायित किया जाय, तो एक इस प्रकार की नारी का उद्‌भव होगा, जो विश्व-इतिहास में अभूतपूर्व होगी। जैसे प्राचीन यूनान की नारियाँ शारीरिक दृष्टि से करीब-करीब आदर्श थी, वैसे ही ये नारियाँ बौद्धिक तथा आध्यात्मिक दृष्टि से उसके समतुल्य होंगी – एक ऐसी नारी जो करुणामयी, स्नेहशील, कोमल, सहनशील, विशाल-हृदय, बुद्धिमती, परन्तु सर्वोपरि आध्यात्मिकता में महानतम होगी। ❖ **(क्रमशः)** ❖

*(प्रबुद्ध भारत, जनवरी-दिसम्बर १९३१)*

***नरेन्द्र कोहली***

कहते हैं, हिन्दी के कथा-साहित्य में गतिरोध आ गया है। ऐसे संकट हिन्दी साहित्य में पहले भी आये हैं। हिन्दी में आते हैं, तो अन्य भाषाओं के साहित्यों में भी आते होंगे। पर फिर भी सारी दुनिया का काम चलता है। यह कोई ऐसी कठिनाई नहीं है, जिसका कोई समाधान न हो।

पर इस गतिरोध से भयंकर समस्या दूसरे क्षेत्र में पैदा हो गयी है। सारे हिन्दी-भाषी प्रदेशों में नाम को लेकर गतिरोध आ गया है। कहीं किसी के घर में कोई सन्तान हुई और मुसीबत उठ खड़ी हुई। कितनी भयंकर समस्या है कि बच्चे का नाम क्या रखें?

पता नहीं क्यों, मेरे सारे नाते रिश्तेदारों, मित्रों और जान-पहचान वालों ने यह मान लिया कि सन्तान उत्पन्न करना उनका काम है, पर उनके बच्चों का नाम रखना मेरा काम है।

इस कर्तव्य को पूरा करने मुझे कोई परेशानी नहीं थी, पर हिन्दी कथा-साहित्य के इस गतिरोध ने मेरी गति भी अरूद्ध कर दी है। पहले यह होता था कि किसी ने नाम पूछा और हमने कोई भी पत्रिका उठा ली। जिस किसी कहानी की नायिका या नायक का नाम दिखा, वही टिका दिया। लोग होते भी इतने सरल थे कि झट वह नाम पसन्द कर लेते थे।

अब हिन्दी कथा-लेखक अपनी कहानियों में नाम रखने से कतराने लगा है। पचासों कहानियाँ पढ़ जाओ तो कहीं एक-आध नाम मिलता है; नहीं तो लोग 'यह','वह' से काम चला लेते हैं। हर कही के नायक का नाम 'वह'। और मेरी बात मान अपनी सन्तान का नाम 'वह' रखने को कोई तैयार नहीं। नाम हिन्दी का कहानी-लेखक नहीं रखता, और परेशानी मेरे लिए खड़ी हो गयी !

मेरी मस्तिष्क में एक साहित्यिक टोटका आया। मैंने सोचा, कथा-साहित्य में गतिरोध आने पर भी तो आखिर हिन्दी कहानी-पत्रिकाओं का सम्पादक अपना कार्य किसी प्रकार चला ही रहा है न। कैसे चलाता है वह?

थोड़ी-सी छानबीन से पता चला कि कलकत्ता और बनारस में बहुत दूरी नहीं है। बस, कलकत्ता से बँगला कहानियाँ बनारस में आ जाती हैं, अर्थात् हिन्दी कहानी-पत्रिकाओं का सम्पादक बँगला साहित्य मे स्मगल करता है। मैंने भी वही तरिका अपनाया-बँगली नामों का हिन्दी में स्मगल करना शुरू किया। सरल-सा मार्ग था और सुविधा यह भी थी कि कहानी का सर्वाधिकार चाहे लेखक के पास हो, सम्पादक के पास हो या प्रकाशक के पास, उसके नायक-नायिका के नामों का

कापी-राइट किसी के भी पास नहीं होता। तो किसी के अधिकारों का अतिक्रमण नहीं हो रहा था।

मैंने हजारों-लाखों नामों को पीट-पीटकर खड़ा किया और खड़ी बोली के नाम बना लिये !

पर इस बार प्रादेशिकता आड़े आयी। मेरे भाई-बन्धु, मित्र तथा पड़ोसी अधिकांशत: पंजाबी हैं। दूसरे प्रदेशो के लोग मेरा पंजाबी अक्खड़पन कम ही सहते हैं - इसलिए अधिक निभती नहीं। एक कश्मीरी बन्धु ने एक बार कहा था कि मैं उनकी पुत्री के लिए कोई अच्छा-सा नाम चुनकर दूँगा। पर उनकी अनेक शर्तें थी। एक तो वे कश्मीरी थे और कश्मीर बहुत सुन्दर प्रदेश है। फिर उनकी बिटिया कश्मीर के सौन्दर्य से भी अधिक प्यारी थी। उस बच्ची का नाम कुछ ऐसा ही होना चाहिए था जिसमे कश्मीर का सारा प्राकृतिक सौन्दर्य साकार हो सके। मैंने क्षमता-भर परिश्रम किया, किन्तु किसी भी नाम से उन्हें सन्तुष्ट नहीं कर पाया। अन्तत: उन्होंने ही कहा कि यादि मैं कोई नया नाम नहीं दे सकता तो उनके सोचे हुए नाम का हिन्दी में कोई अच्छा-सा पर्याय दे दूँ जोकि बच्ची के नाम रखा जा सके।

मैंने उनकी बात मान ली, इसमें मुझे कोई परशानी नहीं थी। मैंने उनका सोचा हुआ नाम पूछा।

''रोजालीना।'' वे बोले – ''इसमें कश्मीर का सौन्दर्य, कश्मीर के रोज का सौन्दर्य, सब कुछ आता है। वैसे पण्डित नेहरू भी कश्मीरी थे और वे अपने कोट पर गुलाब का फूल टाँका करते थे। सच पूछिये तो...'' और वे अत्यन्त भावुक हो उठे – ''रोजलीना शब्द से ही हमारी बेबी का चेहरा आँखों के सामने घिर जाता है।''

''नाम तो बहुत हैं !'' – मैंने स्वीकार किया।

– ''बस, कठिनाई इतनी है कि नाम अँग्रेजी में है और हमारे रिश्तेदार इसे हजम नहीं कर पा रहे। आप इसका हिन्दी या भारतीय पर्याय दे दें'' – उन्होंने कहा।

मैंने बहुत सोचा, शब्द कोश उलट-पलट डाले और तब खोजकर उनको 'रोजलीना' का पर्याय दिया – ''गुलाबो''।

उन्होंने मेरा चेहरा देखा और नाक सिकोड़कर बोले – ''आखिर पंजाबी हो न !''

मुझे तब भी लगा था कि प्रदेशिकता मेरे कर्तव्य में बाधा खड़ी कर रही है।

और अब जब मैंने बँगल से नाम स्मगल करने आरम्भ किये हैं, तब भी मुझे यही लग रहा है।

अभी कल ही मेरे एक पंजाबी पड़ोसी आये थे। उनके उनके घर पर परम परमेश्वर की कृपा से एक पुत्तर का जनम होया था। अत: वे चाहते थे कि मैं उनके सुपुत्तर के लिए कोई सोणा-सा नाँ चुन दूँ।

मैं मान गया। वैसे इतनी जल्दी मैं समान्यत: माना नहीं करता। पर कल रात से एक बड़ा मधुर-सा नाम मेरे मन में चक्कर-भँबीरी काट रहा था। सोचा – इनको वही नाम बता दूँ। इनके सुपुत्तर को नाँ मिल जाएगा और मुझे उसकी चक्कर-भँबीरी से मुक्ति।

मैंने – ''लालाजी ! इसका नाम तो आप रखें, निकुंज। बढ़िया नाम है और सारे मुहल्ले सें किसी का नाम नहीं है।''

– ''आप मजाक बढ़िया करते हैं, मास्टर साहब !'' – वह दोनों हाथों से ताली पीटकर खिड़खिड़ाये – ''क्या नाँ चुना है। कुम्भकरन जैसा लगता है।''

मैंने कुछ नहीं कहा, चुपचाप उन्हें देखता रहा।

''ऐसा करो'' – वह बोले – ''कोई बढ़िया-सा अँग्रेजी का नाँ सोचो। मैंने सोचा है, वैल्कम कैसा रहेगा? अपने मकान का नाँ भी हम इसी पुत्तर के नाम पर 'वैल्कम बिल्डिंग' रखेंगे।''

मेरी बुद्धि चक्कर खा गयी। ऐसे नाम की तो मैंने कल्पना ही नहीं की थी। पिंकी-शिंकी तो आम लोग रखने लगे हैं। सुना था, किसी ने अपनी बेटी का नाम 'ट्विंकल' भी रखा है। हमारे पड़ोस में एक साहब ने अपने बेटे को 'प्रिंस' घोषित किया है। पर 'वैल्कम' ऊँचा नाम था।

''पहला पुत्तर है न?'' – पूछा।

''हाँ जी ! पैल्ला, एकदम पैल्ला'' – वह बोले।

''तो ठीक है'' – मैं बोला – ''इसका नाम वैल्कम रखिए और दूसरे का फेयरवैल।''

वे एक साथ दो-दो नाम पसन्द करके चल पड़े।

अभी पिछले दिनों ही क्षेत्रीयता ने मुझे एक बार पछाड़ दिया। हमारे मकान से चौथे मकान में रहनेवाले पड़ोसी का लड़का तीन वर्ष का हो गया था, पर वे अभी तक उसके लिए एक नाम तक नहीं खोज पाये थे। जैसे-जैसे दिन निकलते जाते थे, उनकी चिन्ता और भी गहरी होती जाती थी। जब अपने लड़के के लिए एक उपयुक्त नाम तक नहीं ढूँढ़ पा रहे थे तो उसके कन्या और नौकरी कहाँ से खोज पाएँगे !

मुझसे मिले तो अपनी चिन्ता-गाथा ले बैठे। बहुत रोये और काफी रोकने पर भी मेरा ह्रदय पूरा गल गया और फेफड़े की बारी आ गई, तो मैंने पूछा, ''आखिर समस्या क्या है?''

''समस्या क्या है'' – वह बोले – ''बबुआ की महतारी की हठ और क्या?'

''क्या हठ है?'' – बहुत चाहने पर भी उनका घरेलू रहस्य पूछने से स्वयं को न रोक सका।

वह बोले – ''हमारा बबुआ बहुत शोर मचाता है, बहुत ही ज्यादा। उसकी महतारी कहती है कि उसका नाम हम उसके शोर मचाने पर ही रखेंगे।''

मैं चकित हो गया, हठ को सुनकर। यह भी क्या हठ ! लोग गुण पर तो नाम रखते ही हैं, पर दोष को लेकर नाम ! तिरिया हठ !

मुझे चिन्तित देखकर वह बोले – ''कोई नाम सोच रहे हैं क्या?''

मैंने कहा – ''एक नाम तो सूझ रहा है। आपके बबुआ के शोर मचाने से मिलता-जुलता नाम। शायद आपको पसन्द आये।''

''हमारी पसन्द क्या है,' उनका मुँह लटका ही रहा – ''पसन्द तो बबुआ की महतारी की। बोलिए, क्या नाम सूझा है आपको?''

''कोलाहल !'' – मैंने बताया।

''कोलाहल !'' – उन्होंने दुहराया – ''वैसे तो सुन्दर है, पर बबुआ की महतारी को पसन्द नहीं आवेगा।''

''क्यों?'' – मैंने पूछा।

बोले – ''नाम तो कोई हमरे देसवा जैसा ही होना चाहिये। जैसे हमारा नाम रामखेलावन। कोई ऐसन ही नाम हो।''

मेरी बुद्धि चकमक हो रही थी। जल्दी से बोला, ''रामखेलावन के तौल पर आप शोरमचावन रख दीजिए।''

''शोरमचावन !'' – वह उछल पड़े – ''बहुत बढ़िया ! हम तीन बरिस से एही नाम तो खोज रहे थे। आप सचमुच बहुत बुद्धिमान हैं, मास्टर साहब !''

और वे चले गये।

बच्चे के गुण-दुर्गुण पर नाम रखने वाले वह ही नहीं थे। मेरे एक मित्र का पल्ला पकड़कर एक और साहब आये। पता नहीं लोगों कहाँ-कहाँ से मालूम हो जाता है कि मैं बच्चे का नाम रखने में बहुत दक्ष हूँ।

मैंने उन्हें चलते-से-दो-तीन नाम सुझाकर पीछा छुड़ाना चाहा तो वह खुले। बोले – ''ऐसे नहीं चलेगा, साहब ! हम तो आपको नामों का स्पेशलिस्ट समझकर आये हैं।''

– ''आपको कैसा नाम चाहिए?'' ऐसे अवसरों पर मैं स्वयं को उस दूकानदार की स्थिति में पाता हूँ, जो ग्राहक को तैयार माल से सन्तुष्ट न कर पाने के कारण ऑर्डर पर माल बनवा देने का प्रस्ताव रखता है।

''बात यह है साहब'' – वह बोल – ''आप जानते हैं, किसको अपना बच्चा प्यारा नहीं लगता। हमें भी प्यारा है। वैसे आप उसे देखें तो आप भी मानेंगे कि वह बहुत प्यारा है। क्यों भाई साहब !' उन्होंने मेरे मित्र को ठोका दिया – ''ठीक कह रहा हूँ न?''

''जी हाँ ! जी हाँ ! बहुत प्यारा बच्चा है'' – मेरे मित्र ने कहा।

''पर साहब !'' वह फिर बोले, ''बहुत सताता भी है। हम चाहते हैं कि उसका कुछ ऐसा नाम रखा जाए कि उसका प्यारापन और सताना दोनों बातें कवर हो जाएँ। काम कठिन तो है, पर आप विद्वान हैं। कोई-न-कोई नाम तो सुझा देंगे।''

मैंने सोचा बुद्धि ने एक चमत्कार किया। ऐसे चमत्कार वैसे कभी-कभी ही होते हैं। पर हो जाते हैं।

मैं बोला, ''आपकी शर्तें बहुत कठिन हैं, पर फिर भी प्रयत्न करना हमारा धर्म है। मेरे मन में एक है। नाम अत्यन्तसाहित्यिक है और हिन्दी साहित्य के मूर्धन्य साहित्यकार, कवि तथा नाटककार जयंशकर प्रसाद की अलौकिक प्रतिभा की उपज है।'' मैंने देखा, वे श्रद्धा से नत होकर मेरी बात सुन रहे थे। मैं फिर बोला, ''प्रसाद ने भी बचपन के इन्हीं दोनों पक्षों को एक साथ देखा था और अपने एक गीत 'उठ-उठ री लघु-लघु लोल नहर' में उन्होंने प्यारे और हठीले बचपन करो 'दुर्ललित' कहा है। आप यही नाम अपने बच्चे का भी रख दे।''

उनके चेहरे के भाव नहीं बदले। वे वैसे ही जड़ मुद्रा में बैठे रहे।

''साहब ! हम नौकरी-पेशा लोग तो हैं नहीं।'' कुछ देर बाद, खीझ के साथ बोले, ''ये फैशनेबल नाम हमरे घरों में नहीं चलते। हमारे बच्चे को तो बड़े होकर आढ़त का काम करना है, फर्म खोलनी है। हमें तो ऐसा नाम चाहिए, जो किसी फर्म का नाम भी हो सके। लड्डाराम, गेंदामल वगैरह-वगैरह। कोई ऐसा ही नाम बताइए।''

मैं चिन्ता में पड़ गया। ठीक है, नाम को लेकर जहाँ क्षेत्रीय आग्रह हैं, वहाँ व्यावसयिक आग्रह भी होंगे। आखिर किसी फिल्म ऐक्टर का नाम बिछावनमल तो नहीं हो सकता न ! उसी तरह फर्म का नाम....और फिर उनकी शर्तें !

मैं बोला, '' आप ऐसा करें, बच्चे का नाम प्यारूमल सताऊमल रख दें। फर्म का नाम जरूर लगेगा, बच्चे का चाहे न लगे।''

उनकी आँखों का भाव पहली बाल बदला और वह चमककर बोले, ''मारा ! अब ठीक है। वह प्यारूमल सताऊमल एण्ड संस। वाह भई, वाह !''

पर उसी दिन से नाम का काम स्थागित कर दिया है। अब मैंने नामों का वर्गीकरण आरम्भ कर रखा है – फर्मों के उपयुक्त नाम, नेताओं के उपयुक्त नाम, ऐक्टरों के उपयुक्त नाम इत्यादि। देखना यह है कि कितने वर्ग बनते हैं और फिर उनके अनुसार नामों की सूचियाँ बनाऊँगा और फिर नाम बताने का ही धन्धा आरम्भ कर दूँगा। उन नामों को पेटेण्ट करवा लूँगा और फिर पेटेण्ट नामों की रायल्टी देकर ही लोग उनमें से कोई नाम रख सकेंगे। आप अपनी आवश्यकता अग्रिम रूप से लिख भेजें !

❑❑❑

## नारायणपुर में मन्दिर-प्रतिष्ठा

१० नवम्बर २००५ को, जगद्धात्री पूजा के दिन रामकृष्ण मठ व मिशन के वरीष्ठ उपाध्यक्ष श्रीमत् स्वामी आत्मस्थानन्द जी महाराज ने छत्तीसगढ़ के बस्तर अंचल में स्थित रामकृष्ण मिशन आश्रम, नारायणपुर में 'प्रार्थना-मन्दिर' का उद्‌घाटन किया। इस शुभ अवसर पर ९ से १२ नवम्बर तक प्रसिद्ध विद्वानों तथा सन्तों के व्याख्यान तथा विख्यात् कलाकारों द्वारा सांस्कृतिक कार्यक्रम आदि अनेक कार्यक्रम आयोजित किये गये।

९ नवम्बर के दिन स्वामी वैद्यनाथानन्द जी ने वास्तु-पूजन किया। इस अवसर पर आयोजित सभा का प्रथम सत्र एक सुन्दर पाण्डाल में अपराह्न के साढ़े तीन बजे विवेकानन्द विद्यापीठ के आदिवासी बालक-बालिकाओं के वेद-पाठ से प्रारम्भ हुआ। आश्रम के सचिव स्वामी निखिलात्मानन्द जी ने स्वागत-भाषण द्वारा आगत सभी सन्तों एवं भक्तों का स्वागत किया। सभा की अध्यक्षता रामकृष्ण मठ व मिशन के महासचिव स्वामी स्मरणानन्द जी ने की तथा श्रीरामकृष्ण, माँ सारदा एवं स्वामी विवेकानन्द जी के चित्रों के समक्ष दीप प्रज्वलित किया। रामकृष्ण मिशन के पूर्व समन्वयक श्री सुविमल चटर्जी ने 'अबूझमाड़ विकास-प्रकल्प' के इतिहास पर एक अति मोहक व्याख्यान दिया। स्वामी प्रभानन्द तथा शशांकानन्द जी ने 'रामकृष्ण-भावधारा' विषय पर प्रांजल विचार प्रस्तुत किये और स्मरणानन्द जी ने अध्यक्षीय भाषण दिया। शाम को ७ बजे विद्यापीठ के छात्रों ने सांस्कृतिक कार्यक्रम और भिलाई के प्रसिद्ध गायक श्री प्रभंजन चतुर्वेदी ने भजन प्रस्तुत किये।

१० नवम्बर को प्रातः ८.१५ बजे रामकृष्ण संघ के वरीष्ठ उपाध्यक्ष श्रीमत् स्वामी आत्मस्थानन्द जी ने सैकड़ों संन्यासी, ब्रह्मचारियों तथा हजारों भक्तों की उपस्थिति में वेद-पाठ के साथ श्रीरामकृष्ण प्रार्थना-मन्दिर का उद्‌घाटन किया। ९ बजे स्वामी वैद्यनाथानन्द जी ने भगवान श्रीरामकृष्णदेव की विशेष पूजा की। इस अवसर पर रामकृष्ण संघ के द्वितीय उपाध्यक्ष श्रीमत् स्वामी गीतानन्द जी महाराज भी उपस्थित थे। ११ बजे छत्तीसगढ़ के मुख्यमंत्री डॉ रमन सिंह ने नये मन्दिर में श्रीरामकृष्ण को श्रद्धासुमन अर्पित किये और आश्रम-परिसर में स्वामी विवेकानन्द जी की संगमरमर की मूर्ति का अनावरण किया। स्वामी शशांकानन्द जी ने 'श्रीराम से श्रीरामकृष्ण' नामक विषय संगीतमय प्रवचन दिया। २ बजे विवेकानन्द विद्यापीठ, नारायणपुर के बच्चों द्वारा जस-नृत्य और 'दरिद्रनारायण' नाटक प्रस्तुत किया गया।

अपराह्न ३.३० बजे महासचिव स्वामी स्मरणानन्द जी की अध्यक्षता में जनसभा हुई, जिसमें रविशंकर विश्वविद्यालय, रायपुर के प्रो-वाइसचांसलर डॉ. ओमप्रकाश वर्मा तथा रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के सचिव स्वामी सत्यरूपानन्द जी ने 'श्रीरामकृष्ण के जीवन-दर्शन' पर प्रकाश डाला। स्वामी आत्मस्थानन्द जी महाराज ने एक सुन्दर स्मारिका – 'समर्पण' का विमोचन किया और समापन-भाषण दिया। उन्होंने शिल्पकारों और मन्दिर-निर्माण से जुड़े निकटतम सहयोगियों को स्मृति-चिह्न भी प्रदान किये। शाम ७ बजे बिलासपुर के श्री पार्थ भट्टाचार्य तथा हैदराबाद दूरदर्शन की श्रीमती सुदेशना गुप्ता ने भजन प्रस्तुत किए और भोपाल के डॉ असीत बनर्जी ने सितार-वादन किया।

११ नवम्बर को ११ बजे स्वामी त्यागात्मानन्द जी ने 'सीता से सारदा देवी' विषय पर संगीतमय वक्तृता दी। २ बजे विवेकानन्द विद्यापीठ और माँ सारदा विद्यामन्दिर, ओरछा की छात्र-छात्राओं द्वारा जसनृत्य तथा नाटक प्रस्तुत किये गये। ३.३० बजे डॉ. सुचित्रा मित्रा, स्वामी राघवेन्द्रानन्द तथा स्वामी चिन्मयानन्द जी ने 'माँ सारदा के जीवन-दर्शन' पर व्याख्यान दिए। श्रीमत् स्वामी गीतानन्द जी महाराज के आशीर्वचन तथा स्वामी गौतमानन्द जी के अध्यक्षीय भाषण के साथ सत्र का समापन हुआ। शाम ७ बजे छात्राओं ने 'सबकी माँ सारदा' नाटक प्रस्तुत किया और पद्मभूषण तीजन बाई ने छत्तीसगढ़ी में 'पंडवानी' महाभारत प्रस्तुत की।

१२ नवम्बर को प्रातः ८ बजे श्रीरामकृष्ण, माँ सारदा और स्वामी विवेकानन्द जी के सुसज्जित चित्रों के साथ हजारों भक्तों एवं सन्तों ने भजन-कीर्तन के साथ जुलूस निकाला, जो नगर का भ्रमण करते हुए १०.३० बजे आश्रम लौटा। २ बजे छात्राओं द्वारा 'सुवा-नृत्य' और छात्रों द्वारा 'शास्त्रार्थ' नाटक किया गया, जिसकी सबने बड़ी प्रशंसा की। ३.३० बजे स्वामी श्रीकरानन्द जी की अध्यक्षता में जनसभा हुई, जिसमें स्वामी निखिलेश्वरानन्द जी, स्वामी ब्रह्मस्थानन्द जी और डॉ. केदारनाथ लाभ ने 'स्वामी विवेकानन्द के जीवन-दर्शन' पर प्रकाश डाला।

७ बजे दीपक बनर्जी तथा साथियों ने 'पंथी नृत्य' और देवगाँव के आदिवासियों ने गंडीनृत्य, मांद्रीनृत्य और गौरमार-नृत्य प्रस्तुत किये। आश्रम-सचिव स्वामी निखिलात्मानन्द जी के धन्यवाद-ज्ञापन के साथ सभा सम्पन्न हुई। १३ नवम्बर को देश के दूर-दूर से आये सन्तों ने स्थानीय शक्तिपीठ दन्तेश्वरी माता का दर्शन और चित्रकोट के विख्यात जलप्रपात का सविस्मय अवलोकन किया।

## रामकृष्ण मिशन की कार्यकारिणी-समिति के २००४-२००५ के रिपोर्ट का सारांश

रामकृष्ण मिशन की ९६वीं वार्षिक साधारण सभा बेलूड़ मठ में १८ दिसम्बर २००५ को अपराह्न ३.३० बजे आयोजित हुई।

इस वर्ष की **महत्त्वपूर्ण घटनाओं** में निम्नलिखित विशेष उल्लेखनीय हैं – हिन्द महासागर में उठी महाविनाशकारी सुनामी तूफान से क्षतिग्रस्त हुये अन्दमान द्वीपसमूह, तमिलनाडु, केरल तथा श्रीलंका के विविध स्थानों में रामकृष्ण मठ तथा मिशन ने व्यापक स्तर पर राहत-कार्यों की शुरुआत की। हजारों आपदग्रस्त लोगों को खाद्य-सामग्री, चिकित्सा-सेवा तथा अस्थायी आवास प्रदान किये गये और कपड़े, बर्तन, चटाइयों आदि आवश्यक वस्तुओं का वितरण किया गया। इस विनाशकारी तूफान से सर्वाधिक प्रभावित हुये मछुआरों में चेन्नई, कालडी और बट्टिकोलोआ (श्रीलंका) केन्द्रों के द्वारा फाइबरग्लास की नावें, मछली पकड़ने के जाल व अन्य उपयोगी वस्तुयें बाँटी गयीं। नवम्बर २००५ तक कुल ४८७ नावें बाँटी गयीं एवं पुनर्वास प्रकल्प के अन्तर्गत निर्माणाधीन ३२४ आवासों में से १५० नवनिर्मित आवास क्षतिग्रस्त लोगों को हस्तान्तरित कर दिये गये। बाकी १७४ आवास, ३ समाज-भवन तथा एक विद्यालय निर्माणाधीन हैं। सुनामी से प्रभावित कुछ बच्चों को हमारे छात्रावास में भर्ती कर लिया गया है। मार्च २००५ तक राहत और पुनर्वास के कार्यों में ५.२२ करोड़ रुपये व्यय हुए।

मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने विश्वविद्यालय अनुदान समिति की सलाह के आधार पर रामकृष्ण मिशन के संचालन में 'रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द एजुकेशनल एण्ड रिसर्च इंस्टीट्यूट' (RKMVERI) नामक डीम्ड विश्वविद्यालय शुरू करने की घोषणा की। प्रारम्भ में इसके लिये निम्नोक्त विषय चुने गये हैं – (१) विकलांगता व्यवस्थापन तथा विशेष शिक्षण, (२) सर्वांगीण ग्रामीण तथा आदिवासी विकास, (३) भारतीय सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक विरासत तथा मूल्यबोध-आधारित शिक्षा और (४) राहत एवं पुनर्वासन सहित आपदा-प्रबन्धन। इस वर्ष मिशन ने स्वामी विवेकानन्द के जन्म-स्थान पर 'रामकृष्ण मिशन स्वामी विवेकानन्द पैतृकगृह एवं सांस्कृतिक केन्द्र' नामक एक नया शाखा-केन्द्र आरम्भ किया।

**चिकित्सा के क्षेत्र में** – पटना केन्द्र के चिकित्सालय में चक्षु विभाग, लखनऊ स्थित अस्पताल में टेलिमेडिसिन विभाग और वृन्दावन सेवाश्रम में ब्लड बैंक की शुरुआत विशेष उल्लेखनीय हैं।

**शिक्षा के क्षेत्र में** – राष्ट्रीय मूल्यांकन एवं प्रत्यायन परिषद् (विश्वविद्यालय अनुदान समिति की एक स्वतंत्र संस्था) ने पश्चिम बंगाल स्थित हमारे सारदापीठ केन्द्र के विद्यामन्दिर को ए+ (प्राप्तांक ९०-९५%) श्रेणी घोषित किया है। चेन्नई विद्यापीठ के विवेकानन्द कॉलेज को वर्ष २००५-०६ से मद्रास विश्वविद्यालय से संलग्न सभी विषयों में स्वायत्तता प्रदान की गई है। इस कॉलेज के वनस्पति विज्ञान और पौध-बायोटेक्नालॉजी विभाग की एल्गल बायोटेक्नालॉजी इकाई ने चार भारतीय कम्पनियों से मिलकर दूषित जल के शोधन हेतु एक जापानी कम्पनी के साथ पॉलिमर-बायोडिग्रेडेशन के क्षेत्र में काम करने का समझौता किया है।

**ग्रामीण विकास के क्षेत्र में** – हमारे नरेन्द्रपुर (कोलकाता) स्थित लोकशिक्षा-परिषद् के जन-शिक्षण-संस्थान (JSS) की पश्चिम बंगाल व उत्तर राज्यों में स्थित JSS इकाइयों को मदद व मार्गदर्शन देनेवाले अग्रिम JSS के रूप में मान्यता दी गई। भारत में केन्द्रीय ग्रामीण स्वच्छता परियोजना के संवर्धन में लोकशिक्षा परिषद् के मेदिनीपुर डिमांड ड्रिवेन सैनिटेशन स्ट्रैटजी को उत्कृष्ट मानक के रूप में मान्यता दी गई। भारत सरकार के ग्रामीण विकास मंत्रालय के अन्तर्गत पेयजल आपूर्ति विभाग ने लोकशिक्षा-परिषद् को पूर्ण स्वच्छता-प्रबन्ध प्रचार कार्यक्रम में २००४-०५ के लिये प्रमुख सहयोगियों की क्षमता विकास के लिये मान्यता-प्राप्त चार प्रमुख सहयोगी केन्द्रों में से एक के रूप में स्वीकृति दी।

रामकृष्ण मठ में निम्नलिखित घटनायें विशेष उल्लेखनीय हैं – आन्ध्रप्रदेश में कड़प्पा, झारखंड में घाटशिला और जर्मनी में बिन्दवेइड (बॉन के निकट) केन्द्रों का शुभारम्भ, पश्चिम बंगाल के मेखलीगंज आश्रम में शिशु-विद्यालय-भवन, केरल-स्थित कालड़ी केन्द्र में विद्यालय-भवन और बैंगलोर के अल्सूर आश्रम में चिकित्सा केन्द्र भवन का उद्घाटन किया गया।

इस वर्ष के दौरान १३.०५ करोड़ रुपये खर्च कर मिशन ने देश के विभिन्न भागों में बृहत पैमाने पर **राहत तथा पुनर्वासन के कार्य** किये जिससे २१८० गाँवों के २.२० लाख परिवारों के लगभग ८.९७ लाख लोग लाभान्वित हुये।

निर्धन छात्रों को छात्रवृत्ति तथा वृद्ध, बीमार एवं असहाय लोगों को आर्थिक सहायता आदि **कल्याण-कार्यों में** ३.३६ करोड़ रुपये व्यय हुये।

१० अस्पतालों व चल-चिकित्सालयों सह १३१ चिकित्सा -केन्द्रों द्वारा करीब ६६.१० लाख रोगियों को **चिकित्सा-सेवा** प्रदान की गयी, जिसके तहत ३९.५९ करोड़ रुपये खर्च हुये।

बाल-विहार से लेकर स्नातकोत्तर स्तर तक, १.८६ लाख विद्यार्थियों को हमारे शिक्षा-संस्थानों द्वारा शिक्षा प्रदान की गयी, जिनमें ६४,००० से भी अधिक छात्रायें थीं। शिक्षा-कार्य के मद में ९२.६६ करोड़ रुपये खर्च किये गये।

१०.६३ करोड़ रुपये के व्यय से कई ग्रामीण एवं आदिवासी विकास योजनाओं का भी कार्यान्वयन किया गया।

इस अवसर पर अपने सदस्यों एवं मित्रों के प्रति उनके हार्दिक एवं निरन्तर सहयोग के लिये हम आन्तरिक धन्यवाद एवं कृतज्ञता व्यक्त करते हैं।

*स्वामी स्मरणानन्द*

**महासचिव**

**रामकृष्ण मठ, इच्छापुर**
**मयाल बन्दीपुर, हुगली - ७१२६१७**

## विनम्र आवेदन

रामकृष्ण मठ तथा मिशन की स्थापना में श्रीरामकृष्ण के एक महान् शिष्य शशी महाराज (स्वामी रामकृष्णानन्द) की भूमिका का वर्णन करते हुए स्वामी विवेकानन्द ने लिखा था - ''शशी मठ का मुख्य स्तम्भ था। उसके बिना मठ का जीवन असम्भव हो गया होता।'' श्रीरामकृष्ण के अन्तिम दिनों की बीमारी के समय शशी महाराज ने अटल श्रद्धा-भक्ति के साथ श्रीरामकृष्ण की सेवा की थी। फिर श्रीरामकृष्ण के देहत्याग के उपरान्त वे आन्तरिक भक्ति के साथ उनके अस्थि-अवशेष की पूजा करते रहे। श्रीरामकृष्ण की जो पूजा आज पूरे विश्व भर के रामकृष्ण मठ तथा मिशन के केन्द्रों में सुप्रचलित दीख पड़ती है, इसके मूल में शशी महाराज की ही अभूतपूर्व भक्ति-भावना निहित है।

शशी महाराज का जन्म कोलकाता से १०० किलोमीटर उत्तर-पश्चिम में स्थित हुगली जिले के एक छोटे-से ग्राम इछापुर में हुआ था। कुछ वर्षों पूर्व स्थानीय भक्तों ने उनके जन्मस्थान पर एक अस्थायी शेड बनवाकर उसमें पूजागृह की स्थापना की और उस स्थान की पवित्रता को बनाये रखने का प्रयास किया। अनेक भक्तों के आन्तरिक आग्रह पर बेलूड़ मठ के संचालक-मण्डल ने संघ की एक शाखा के रूप में उस स्थान का अधिग्रहण कर लिया और २१ अगस्त १९९४ के दिन 'रामकृष्ण मठ, इछापुर' के नाम से उसका उद्घाटन भी हो गया।

इस स्थान के अधिग्रहण के बाद सर्वप्रथम हमने शशी महाराज के सम्बन्धियों के पूनर्वास का कार्य हाथ में लिया और इस पर कुल १२ लाख रुपये खर्च हुए। इसके अतिरिक्त इस क्षेत्र के अभावग्रस्त लोगों के लिये मठ द्वारा निःशुल्क कोचिंग कक्षाएँ, दातव्य चल-चिकित्सालय और विशेषज्ञ चिकित्सकीय सेवाएँ चलायी जा रही हैं। देश-विदेश से आनेवाले आगन्तुक भक्तों की बढ़ती हुई संख्या को देखते हुए हमने यहाँ श्रीरामकृष्ण का एक सार्वभौमिक मन्दिर बनाने का निश्चय किया है। विशेषज्ञों की गणना के अनुसार इस मन्दिर पर लगभग ९३ लाख की लागत आयेगी। इस मन्दिर में जाति, पन्थ तथा धर्म से निरपेक्ष समस्त भक्तों को श्रीरामकृष्ण की प्रार्थना करने का सुअवसर प्राप्त होगा।

१७ जनवरी २००३ को श्रीरामकृष्ण के अन्य महान् शिष्य स्वामी तुरीयानन्द के जन्मदिवस के अवसर पर, रामकृष्ण मठ व मिशन के उपाध्यक्ष श्रीमत् स्वामी आत्मस्थानन्द जी द्वारा इस मन्दिर की आधारशिला रखी गयी।

उदारचेता सज्जनों, भक्तों, सहयोगियों तथा मित्रों से आग्रह है कि आप भी इस सार्वभौमिक मन्दिर के निर्माण में अपने सहयोग का हाथ बढ़ायें।

मन्दिर-निर्माण के लिये दिया जानेवाली राशि आयकर अधिनियम १९६१ की धारा ८०-जी के अन्तर्गत आयकर से मुक्त होगी। **चेक/ड्राफ्ट या मनिआर्डर 'रामकृष्ण मठ, इच्छापुर'** (RAMAKRISHNA MATH, ICHAPUR) के नाम से भेजें। मेरी हार्दिक प्रार्थना है कि श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामी विवेकानन्द और शशी महाराज आप सब पर कृपा करें।

भवदीय

***स्वामी निर्लिप्तानन्द***

अध्यक्ष